यह भी सत्य है

गहरी सरिता का बहता हुआ जल दिखाई नहीं देता किन्तु पानी अपनी गति से चलता रहता है उसी प्रकार मन से प्रवाहमान चेतन के भाव निरन्तर प्रवाहमान रहते हैं। बहती हुई नदी के जल को विशेष पुरूषार्थ से लोग बाँध बनाकर रोक लेते हैं, उसका सदुपयोग कभी नहर के द्वारा खेतों में ले जाया जाता है, तो कभी रोके गये जल से विद्युत उत्पन्न कर रोशनी प्राप्त की जाती है। उसी प्रकार मानस पटल में उठने वाली विचार तरंगों को वाणी की धारा में प्रवाहमान कर अन्तस् में शुभ भावों की नहर के द्वारा नित नये सत्कर्त्तव्य की फसल तैयार की जाती है, और रोके गये भावों से विद्युत ऊर्जा उत्पन्न कर अन्तस् में चेतन को प्रकाशमान कर अपूर्व रोशनी का लाभ प्राप्त किया जाता है।

''**जिन्दगी एक प्रश्न है**'' यह गंगा स्त्रोत है जो आगे चलकर विराट रूप धारण करता है। गंगा का जल प्यास बुझाकर शीतलता प्रदान करता है एवं ''**जल ही जीवन है**'' सूक्ति सिद्ध करता है, ज्ञान बोध का सुरम्य बहाव है जो कायर को वीरता, अकर्मण्य को कर्मठता, अपौरुषेय को पौरुषता प्रदान करता है।

रात में प्रातः छिपी है, शूलों में फूल छिपे हैं, बादलों की घटाओं में चाँद छिपा है उसी प्रकार चेतना में अनन्त सम्पदा छिपी है। पुरुषार्थ हीन जीवन राख के ढेर की तरह है कितनी भी राख उड़ाते जाइये अन्त में राख ही राख आती है चेतना की आग का लेश मात्र भी प्राप्त नहीं होता।

इन्सान का जीवन आग के सोलों में जलने वाला ईंधन है। जितना ईंधन डालते उतना ही अग्नि प्रज्जवलित होती है और ईंधन समाप्त होते ही अग्नि समाप्त हो जाती है। उत्साह और पुरुषार्थमान जीवन गेंद की भांति नीचे गिराने पर दुगुने वेग से ऊपर उछलता है किन्तु पुरुषार्थ हीन जीवन कच्चे घड़े की भाँति बिखर जाता है।

पतझड़ के बीत जाने पर बसंत की बहार आती है।
बसंत की बहार पाने वर्षा की फुहार आती है।।

अकर्मण्य एवं पुरुषार्थ हीन इंसानों का जीवन दीपक की भाँति वायु के छोटे से झकोरे से बुझ जाता है किन्तु संघर्षशील इन्सान तूफानों के बीच लड़ते हुए विषमता से समता के पुष्प एवं शूलों को फूलों की सेज मानकर पथ पर अविराम चलते हैं अंगार का शृंगार बनाकर साधना के पथ पर बढ़ते हुए मुक्ति का आयाम खोजते हैं।

धारा के प्रवाह में तो मुर्दा भी बहकर सागर तक पहुँच जाता है इसमें कोई संघर्ष नहीं नहीं, चेतनता नहीं, पुरुषार्थ नहीं, पुरुषार्थ तो धारा के विपरीत चलकर

विषम धारा में, तूफानों में लड़ते हुए बढ़ने में है।

ये जिन्दगी ठहराव नहीं 'विशद' संग्राम है।
जिन्दगी पुरुषार्थ और संघर्ष का अंजाम है।
धारा में तो मुर्दा भी बहकर सागर तक पहुँच जाता है।
पुरुषार्थ तो विपरीत धारा की ओर बहने का नाम है।

''**जिन्दगी क्या है**'' कृति को पढ़कर जीवन पथ पर बढ़ते हुए, जीवन संघर्ष में समतामयी ज्योति से सिद्धत्व बुद्धत्व को पाकर शोध से आत्म-बोध करना है।

-आचार्य विशद सागर, खनियांधाना (शिवपुरी)

जीवन संघर्ष

भो चेतन!
तुम इन्सान हो
तो जागो, और
जगाओ, अपना पौरुष
पुरुष वही है
जो पौरुष दिखाए
पौरुष हीन इन्सान
या तो स्त्री (अबला) है
या नपुंसक
जो वीर हैं, महावीर हैं
वह वीरता का वरदान
अपने साथ लेकर चलते हैं
उनके शीश पर
विजय मुकुट
शोभित होता है
वह आत्म-बल के साथ
बाहुबल से
संघर्ष करते हैं।
लक्ष्य की ओर
दृष्टिपात करते हुए-
आस्ते-आस्ते बढ़ते हुए-
समता और क्षमता का
परिचय देते हैं
जो कर्मठ हैं
वह कुछ कर दिखाते
अन्तर शक्ति जाग्रत कर
स्वयं को संवल मानकर
लक्ष्य की ओर बढ़ते
बढ़ाते हैं।
कदम अहर्निश!
निर्विराम/निरन्तर
चलते हैं, जलते हैं-
दीप की तरह
स्वयं प्रकाशित होकर
अखिल विश्व को
आलोकित करते हैं!
उन पथिकों करते हैं!
आह्वानन करते हैं!
पथ और पथ पर खड़े
तरुवर, वनचर
विहंसकर स्वागत करते-
राह पर बढ़ने में
तुम्हारा साथ देंगे।
तुम इन्सान हो न
तो जागो, और
जगाओ अपना पौरुष
क्योंकि?
जीवन एक संघर्ष है
और
इन्सान की जिन्दगी
''विशद'' संघर्षमय है।

-आचार्य विशद सागर, खनियांधाना (शिवपुरी)

जिन्दगी क्या है?

मुक्तकः

जिन्दगी को पाकर चेतना का उपादान खोजना है।
अनादि अनन्त संसार का अवशान खोजना है॥
जिन्दगी एक जिज्ञासा है, उलझी हुई सी।
उस जिज्ञासा का समुचित समाधान खोजना है॥

प्यारे धर्म स्नेही भव्यात्मन्

प्रश्न है कि जिन्दगी क्या है?

जिन्दगी एक वरदान देती चुनौती है, लेकिन उन्हीं के लिए जो उसे स्वीकार करते हैं।

जिन्दगी क्या है?

महान संघर्ष है, लेकिन उन्हीं के लिए जो स्वयं की शक्ति को इकट्ठा कर विजय के लिए जूझते हैं।

जिन्दगी क्या है?

एक भव्य जागरण, पवित्र जल, अमूल्य अवसर, एक दिव्य गीत, एक महान कला, आत्म विज्ञान, लेकिन उन्हीं के लिए जो सत्य साहस के साथ मूर्छा से लड़कर परमात्मा के चरणों में समर्पित है।

जो जिन्दगी की भागमभाग में पड़े हैं उनके लिए जिन्दगी धीमी मृत्यु के अलावा कुछ भी नहीं है।

जिन्दगी स्वयं के द्वारा स्वयं का सृजन है वह नियति नहीं निर्माण है।

आदर्श मात्र जीभ तक नहीं स्वयं के जीवन में उतरना चाहिए, जीभ की आवाज मात्र कान तक रह जाती है। या एक कान से प्रवेश कर दूसरे कान से बाहर निकल जाती है किन्तु जीवन की पुकार इन्सान के अन्तः तल तक प्रवेश कर जाती है जो शाश्वत रूप से जीवन का विकास करती है।

आज इन्सान के विचार और व्यवहार में बहुत फासला बन चुका है इन्सान की कथनी और करनी में बहुत अन्तर आ गया है जो सोचता सो कहता नहीं कहता तो करता नहीं।

त्याग की बात तो हर कोई किया करता है।
सत्य का नारा तो हर कोई दिया करता है॥

उतारे कथनी को करनी बनाकर अपने जीवन में।
ऐसा महावीर तो कोई-कोई हुआ करता है॥

इन्सान बहुरुपिया बना हुआ है जहाँ जाता वहीं अपना रूप परिवर्तित कर लेता है। घर पहुँचता तो पिता, बाबा, दादा आदि बन जाता है। मंच पर पहुँचकर अध्यक्ष, मंत्री बन जाता है तो कभी नेता अभिनेता बन जाता है। इन्सान जीने के नाम पर मात्र नाटक कर रहाहै, दिखावा कर रहा है। जीवन में कोई आनन्द नहीं है, उमंग नहीं है, रस नहीं है, बहार नहीं है, प्यार नहीं है, मधुमास नहीं है, बसंत नहीं है, दुलार नहीं है और उपकार नहीं है।

सत्य की मात्र अपना है शेष सब सपना है सत्य और सत् को पाने वालों का ही जीवन आदर्शमय बना है।

आदर्शमय जीवन बनाने के लिए आत्म-निरीक्षण, आत्म-परीक्षण और आत्म-नियंत्रण की आवश्यकता है। इन्सान का आदर्श और अनादर्श किसी के कहने से नहीं स्वयं के दिल की गवाही पर आश्रित होता है।

भिन्न-भिन्न विचारधारा-

इन्सान की जिन्दगी क्या है? यह प्रश्न जितना आसान लगता है इसका उत्तर देना उतना ही कठिन है। जटिल है। विश्व के धरातल पर जितने लोग हैं उनकी उतनी ही आकांक्षाएँ हैं, आशाएँ हैं, उन्हीं आकांक्षाओं के दल-दल में फँसकर अपने आपको वैसा ही ढालने का उद्यम करते हैं कोई धन कमाना चाहता है तो कोई शोहरत चाहता है। कोई नाम चाहता है तो कोई मान-सम्मान चाहता है। हर इन्सान ऊँचाई की ओर उठना चाहता है, किन्तु गड्ढे खोद रहा है गहराई में। भिन्न-भिन्न लोगों के स्वप्न भिन्न-भिन्न हैं। उन्हें पूरा करने के लिए चिंता में डूबा रहता है। संसार में प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है, जीतकर कुछ करना चाहता है। इस भौतिक संसार में जीकर भौतिक विषय को ही जीवन बनाता है। बहुत ही कम लोग हैं जो यौगिक पारमार्थिक जीवन की ओर अपनी दृष्टि मोड़ पाते हैं।

कुछ लोग भाग्यवादी हैं जो भाग्य पर भरोसा रखते हैं भाग्य के भरोसे बैठे रहकर अकर्मण्य हो जाते हैं। पुरुषार्थ वादी लोग कहते हैं कि **''पुरुषार्थ ही सब कुछ है।''** वह निरंतर आगे बढ़ने की बात करते हैं। तीसरी श्रेणी के लोग हैं जो कहते हैं कि जिसने जन्म दिया है वही खाने को देगा अपनी मान्यतापूर्ण करते हुए कहते हैं।

अजगर करे न चाकरी, पक्षी करने न काम।
दास मलूका कह गये, सबसे दाता राम॥

इन्सान विवेकशील प्राणी है। अपने विवेक से विचार करना है, सोचना है, जानना है, ज्ञान का सदुपयोग करना है कि भोजन की आवश्यकता है, किन्तु जीवन का लक्ष्य मात्र भोजन ही नहीं, जिन्दगी को जाने के लिए भोजन से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण भजन भी है और भजन किस समय पर हो यह निश्चित नहीं, हर क्षण हर पल भजन का समय होता है। भोजन का काल तो निश्चित हो सकता है पर भजन का समय निश्चित नहीं है। एक बार महात्मा गाँधी के पास एक संत आकर कहने लगे गाँधी जी आप महात्मा कहलाते हैं आपसे एक बात कहना चाहता हूँ। गाँधी जी ने कहा कहिए आप क्या कहना चाहते हैं?

संत जी बोले आप हर समय देश की चिंता और लोगों की फिक्र में लगे रहते हैं, कम से कम 1 घण्टे परमात्मा के नाम का जाप अवश्य किया करें। गाँधी जी गंभीर होकर बोले यह आप क्या कह रहे हैं? आप क्या चाहते हैं? हम मात्र 1 घण्टे परमात्मा का नाम लें, शेष 23 घण्टे परमात्मा कोछोड़ दें। नहीं मैं यह नहीं कर सकता मैं तो 24 घण्टे ही परमात्मा का नाम स्मरण करता हूँ और करता रहूँगा। जिसके लिए सम्पूर्ण जीवन एक तीर्थ यात्रा के समान हो, जिसके जीवन का प्रत्येक क्षण प्रभु के चरणों में समर्पित हो, जो स्वयं प्रभुमय हो गया हो, उसने अपने जीवन को जाना है, समझा है, जीवन का सही मूल्य आँका है।

प्यारे भाई! जिन्दगी याचना से नहीं प्रार्थना से बनती है, वासना से नहीं साधना से बनती है, आराम से नहीं आराधना से बनती है, वंचन से नहीं अर्चना से बनती है।

सबसे बड़ी साधना

साधना किसे कहते हैं? पर्वत पर खड़े होकर या अग्नि के बीच तपकर साधना नहीं होती, सबसे बड़ी साधना है इन्सान के जीवन में सन्तोष और समता भाव जागृत होना। जहाँ समता है वहाँ साधना है जहाँ विषमता है वहाँ विराधना है।

एक बार एक व्यक्ति पढ़-लिखकर अपने वास्तविक जीवन में प्रवेश करना चाहता था उसने अपने नजदीकी हितैषी अंकल जी से जाकर पूछा आप यह बताइए मैं अपनी जिन्दगी में प्रवेश करूँ तो क्या बनूँ? श्रावक बनूँ या साधु।

उन्होंने बैठने के लिए इशारा करते हुए अपनी पत्नी को आवाज लगाई अरे! पप्पू की माँ जरा घड़ी तो लेकर आओ समय क्या हो गया है, तुरन्त ही घड़ी लेकर पत्नी आ जाती है, कहती है अभी दोपहर का 1 बज रहा है। पत्नी अन्दर पहुँची ही होगी कि पुनः आवाज लगाई अरे! थोड़ा दीपक तो जलाकर लाइये। पत्नी तुरन्त ही दीपक जलाकर ले आती है, और अपने कार्य में लग जाती है। थोड़ी ही देर हुई कि पुनः आवाज लगाई अरे! पप्पू की माँ मेरे कपड़े तो ला दीजिए वह कपड़े लाकर देती

है और पुनः अपना कार्य करने में व्यस्त हो जाती है। तभी पुनः आवाज दी अरे! मेरा बिस्तर तो लगा दो और पत्नी ने अपना काम छोड़कर बिस्तर तैयार कर दिया। अन्त में यह कहकर मैं जा रहा हूँ दरवाजा बन्द कर लो और उठकर चल देते हैं। जंगल में पहाड़ी की ओर, वहाँ पहुँचकर पहाड़ी के नीचे से आवाज दी।

अरे साधु जी! जरा नीचे तो आइये एक भक्त-आपके दर्शन के लिए आया है। साधु जी कुटिया से निकलकर पहाड़ी से नीचे आ जाते हैं और दर्शन के बाद साधु जी लाठी के सहारे पुनः अपनी कुटिया में पहुँच जाते हैं। कुटिया में पहुँचे ही थे, कि पुनः आवाज दी अरे! साधु जी रहा नीचे तो आइये मुझे एक प्रश्न पूछना है? साधु जी पुनः नीचे आ जाते हैं। पास में आते ही वह व्यक्ति साधु जी अपनी कुटिया में चले जाते हैं। कुटिया में पहुँचे ही होंगे कि पुनः आवाज दी अरे! साधु जी आइये तो मुझे प्रश्न याद आ गया है। उसका उत्तर तो दे जाइये साधु जी पुनः नीचे आते हैं तब उस व्यक्ति ने पूछा साधु जी आपका नाम क्या है? साधु जी ने मीठे स्वर में उत्तर दिया मेरा नाम है आत्माराम है। इसके पश्चात् अंकल जी ने बालक से कहा, देखा तुमने यदि साधु बनना चाहते हो तो इन महात्मा आत्माराम की तरह और यदि साधु बनना सम्भव न हो तो श्रावक का जीवन मेरे परिवार की तरह हो। अन्यथा ब्रह्मचारी बनकर जीवन व्यतीत करना उत्तम है।

कहने का मतलब है कि उन महाशय ने अपनी पत्नी से तीन-चार बार दोपहर के समय दीपक जलाकर माँगा, वस्त्र माँगे, बिस्तर लगवाया किन्तु किसी प्रकार का तर्क-वितर्क न करते हुए पति की आज्ञा का सहर्ष पालन किया और अपने अन्दर क्रोध नहीं आने दिया तथा कोई प्रश्न ना होने पर भी साधु जी को दुबारा नीचे उतारा किन्तु फिर भी उनके अन्दर क्षोभ नहीं आया। अतः साधु बनना चाहते हो तो इस प्रकार बनो अपने अन्दर में हर समय समता का सागर लहराता रहे। समता किसे कहते हैं? तो आचार्य कहते हैं–

जीविय मरणे लाहा-लाहे, संजोग विप्प जोगे य।
बन्धुरिय सुह दुक्खादो, समदा समायियं णाम्॥

जीवन में, मरण में, लाभ में, अलाभ में, संयोग में, वियोग में मित्र और शत्रु में, सुख और दुःख में जो प्रसन्न रहता है उसे समता कहा गया है। समता साधु का जीवन है। साधु का जीवन संन्यास से प्रारम्भ होता है और संन्यास बाहर का आवरण नहीं अन्तरंग की विशद घटना है। संन्यास न दिया जा सकता है न लिया जा सकता है। संन्यास यदि देने और लेने की चीज होती तो व्यापार बन जाता विश्व बाजार में प्रत्येक वस्तु का लेन-देन तो हो सकता है किन्तु अन्तश्चेतना का लेन-देन और व्यापार

नहीं होता है।

द्विज कौन?

जैन सिद्धान्त के प्रसिद्ध ग्रन्थ आदिपुराण में आचार्य जिनसेन स्वामी ने संन्यासी साधु को द्विज कहा। द्विज का अर्थ है कि द्वि जन्मा, जिसका दूसरा जन्म हुआ हो। मरकर जन्म लेना तो आसान है किन्तु जीते जी जन्म लेना बड़ा कठिन होता है। मुश्किल होता है। संत जी दुबारा जन्म लेते हैं जब दीक्षा लेते हैं तो उनका नाम बदल जाता है, ग्राम बदल जाता है, धाम बदल जाता है, काम बदल जाता है, पुरानी जिन्दगी का अंत होकर नई जिन्दगी प्रारम्भ हो जाती है। सब कुछ नया प्राप्त होता है तो जिन्दगी भी नई बनानी पड़ती है, दूसरा जन्म होता है, वीतरागी गुरुदेव के द्वारा, माता-पिता तो मात्र तन को ही जन्म देते हैं किन्तु गुरु जीवन का जन्म देते हैं इसीलिए भजन में कहा है–

तन को रचा सम्हाला, माता-पिता ने मेरे,
जीवन संचारा गुरु ने, दे ज्ञान के उजाले।

गुरु वास्तविक जीवन प्रदान करते हैं। जीवन में प्राण फूँकते हैं। जीव को वास्तविक सद्ज्ञान की राह दिखाकर जीवन्त करते हैं। संन्यासी संसार में रहकर संसार से परे हो जाते हैं, विरक्त हो जाते हैं। कहा भी है–

''संसार में रहकर प्राणी संसार को तज सकता है।''

लोग कहते हैं। संसार अनन्त है, संसार अनन्त नहीं है, कामनाएँ, वासनाएँ, कषाएँ, कषाएँ, आकांक्षाएँ अनन्त हैं। कषाएँ और आकांक्षाएँ जितनी तीव्र होंगी संसार भी उतना अधिक बड़ा होगा जिसकी वासनाएँ और कषाएँ समाप्त हो गई उसके संसार का भी अन्त समझो।

कहा है–

वह पराधीन परवादी है, वह मानव दीर्घ संसारी है।
जिसमें अनन्त अभिलाषा है, वह सबसे बड़ा भिखारी है।

भगवान महावीर कहते हैं, कषायों का अंत होते ही 48 मि0 के अन्दर केवल ज्ञान प्राप्त होता है। अर्हन्त बन जाता है।

भोग नहीं योग में जिएँ-

भोग से भोग बढ़ते हैं और संसार बढ़ता जाता है। भोग भोगने से कभी पूर्ण नहीं होते। कहा भी है–

''भोगों को इतना भोगा कि खुद को ही भोग बना डाला'' योगी योग

में जीते हैं और धीरे-धीरे योग भी समाप्त हो जाता है और योग समाप्त होते ही संसार का भीअंत हो जाता है। भोगी ही आखिर योगी बनता है। योगी क्या महायोगी बनता है? भगवान महावीर महायोगी हो गये हम उनके अनुयायी भक्त उन्हीं की संतान हैं। योगी (साधु) को सिंह वृत्ति वाला कहा जाता है तो भक्त को भी श्रावक कहा जाता है। जो शावक (सिंह का बच्चा) का ही बिगड़ा हुआ नाम है।

अर्थात्-साधु यदि सिंह के समान वृत्ति वाले हैं तो श्रावक भी सिंह के बच्चे से कम नहीं होते। श्रावक भी परिवार के बीच रह के भोगों के एक देश त्यागी होते हैं। इसीलिए शावक (श्रावक) यानि सिंह ही हैं।

यद्यपि कमल कीचड़ में खिलता है किन्तु कीचड़ में लिप्त नहीं रहता, यदि कीचड़ में लिप्त रहा तो कमल नहीं कीचड़ ही होगा और कीचड़ से ऊपर उठकर सूर्य से मुलाकात करने लगे तो वह कमल बनता है, जो कमल भ्रमरों का मन मुग्ध कर देता है उसी प्रकार इंसान का जन्म तो उसी दलदल में डूब जाता है किन्तु यदि भोगों को छोड़कर योगी बन जाता है तो कमल की भांति (वीतरागी) बनकर खिलता है और सूर्य अर्थात् जिनेन्द्र की वाणी को ग्रहण कर प्रमुदित होकर संसार में इन्सानियत के सूत्र प्रदान करता है। चैतन्य शक्ति जाग्रत करता है।

जिन्दगी धीमी मौत-

प्यारे बन्धु! यह मानव जीवन परमात्मा द्वारा प्रदत्त उपहार है। धीरे-धीरे जीवन का सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ रहा है। आयु कम हो रही है, जीवन चिराग की ज्योति मंद पड़ रही है। शरीर और इंद्रियाँ शिथिल पड़ती जा रही हैं। शरीर और इन्द्रियों का शिथिल पड़ना यह दर्शाता है कि अब शरीर के छूटने का समय निकट आ रहा है। तुमने कभी ख्याल किया कि मौत जब आती है तो वह यों ही एकदम से नहीं आ जाती है बल्कि आहिस्ता-आहिस्ता आती है, पूर्व सूचना देकर आती है। जब काल आता है तो पहले पग पकड़ता है। आदमी के सबसे पहले पैर शिथिल पड़ते हैं। आदमी पहले पैरों से थकता है। उसका चलना-फिरना बंद हो जाता है फिर बोलना भी बंद हो जाता है।

इसके बाद काल पेट को पकड़ता है। पाचन शक्ति कमजोर पड़ जाती है फिर गरिष्ठ भोजन उसे हजम नहीं होता है। खाया हुआ पचता नहीं है। आदमी की तृष्णा तो यह है कि भले ही न पचे, लेकिन अगर सामने कोई माल-मलीदा आ गया तो छोड़ेगा नहीं। फिर भले ही बीमार क्यों न पड़ जाये, डॉक्टर के चक्कर क्यों न काटने पड़ें? फिर काल थोड़ा और ऊपर आता है और उसके दाँत तोड़ देता है जो बिना दाँतों के खाया जाये वही खाओ अब माल-मलीदा नहीं खाना, लड्डू-पेड़ा नहीं खाना, हल्का

भोजन करो, दाल-खिचड़ी-चावल बस **'दाल रोटी खाओ, प्रभु के गुण गाओ'** इसके बाद काल थोड़ा और ऊपर आता है। आँखों की ज्योति चली जाती है। कानों से सुनाई नहीं पड़ता है। मुख में दांत तो हैं नहीं तो दादाजी अपनी बहू को कहेंगे कि बेटा! जरा हलुआ बना लो, मलाई-कोफ्ता बना लो और फिर बहू दादाजी की रोज-रोज की मांगों (डिमाण्ड) से चिढ़कर ताने सुनायेगी, आँखें दिखायेगी। वह कहीं तुम सुन ना लो, इसलिए आँखें भी जाती रहीं और कान भी जाते रहे इसके बाद काल थोड़ा ऊपर चढ़ता है तो फिर बाल सफेद हो जाते हैं। बाल कहते हैं देखा, मैंने भी रंग बदल लिया है। अब तुम भी अपने मन का रंग बदल लो। मैं काले से सफेद हो गया अब तुम भी अपने मन को धवल बना लो, जीवन में जो कर्म कालिमा है, उसे धोकर धवलता की चादर ओढ़ लो। मैं तुमसे कह रहा हूँ जिस बिस्तर पर तुम पैदा हुए, जवान हुए, बूढ़े हुए उसी बिस्तर पर मरण न हो। जीवन के आखिरी समय में उस काम वासना के प्रतीक बिस्तर को छोड़कर पाटे पर, नीचे चटाई पर आकर बैठ जाना, लेट जाना और परमात्मा का, णमोकार मंत्र का, महावीर स्वामी का नाम, स्मरण करते हुए देह छोड़ना-यह धार्मिक मरण संतमरण होगा। अभी तो आदमी पूरी जिन्दगी उसी बिस्तर पर बिता देता है, जवानी पत्नी के साथ बिता देता है। खैर, कोई बात नहीं, बचपन माँ के साथ बिता दिया, जवानी पत्नी के साथ बिता दी तो अब एक काम करो, और वह यह कि उस बिस्तर से हटकर बुढ़ापा प्रभु के संग बिता दो, गुरु भक्ति और सत्संग में बिता दो तो जीवन सफल हो जायेगा। तुम्हारा दुनिया में आना, जीना और दुनिया से जाना सब कुछ मंगल व सार्थक हो जायेगा, आदमी की आसक्ति और मूर्च्छा अनंत है। तुमने जैन मंदिरों में अक्सर एक चित्र देखा होगा।

संसार की दशा-

एक व्यक्ति वृक्ष की टहनी पर लटका है। नीचे कुआं है। कुएँ में चार बड़े-बड़े सांप और एक अजगर है। टहनी को काला और सफेद दो चूहे काट रहे हैं। एक हाथी उस वृक्ष को उखाड़ फेंकने को आतुर है। पल-दो-पल में टहनी टूटने वाली है। इसी बीच एक देवदूत आता है और कहता है–आओ मैं तुम्हें बचा लेता हूँ लेकिन वह व्यक्ति कहता है कि एक मिनट ठहरें। ये जो ऊपर से मधु-बूँद टपक रही हैं। जरा इस मधु-बूंद का स्वाद ले लूँ। देखिए आदमी की आसक्ति। चारों ओर संकटों से घिरा है, मृत्यु निकट है, जीवन खत्म होने का है तब भी क्षणिक सुख की कल्पना में लालायित हो रहा है।

जीवन एक उपहार-

प्यारे बन्धु! यह मानव जीवन परमात्मा द्वारा प्रदत्त उपहार है। इंसानियत का

आधार है। कहीं इस उपहार का उपहास न हो जाए यह आधार निराधार हो न जाए। अपने लिए जो आँख प्राप्त हुई वह प्रभु दर्शन के लिए है, हाथ जो प्राप्त हुए, वह परोपकार के लिए हैं, कान जो मिले हैं वह प्रभु वाणी के श्रवण को मिले हैं पैर जो प्राप्त हुए हैं वह तीर्थ वन्दना के लिए हैं, हृदय जो प्राप्त है वह प्राणी के लिए प्रेम बांटने के लिए है, सिर जो प्राप्त है वह परमात्मा के चरण वन्दन के लिए है तथा मन जो प्राप्त है वह भला और बुरा सोचने के लिए है इनका दुरुपयोग नहीं कर लेना इनके दुरुपयोग से सारे जीवन का दुरुपयोग हो जाएगा।

मुक्तक-

हमें यह सिर प्रभु चरणों में ढोक के लिए मिला है।
इस जीवन को भोगों में व्यतीत करने वालों ध्यान रखो
यह जीवन आत्म कल्याण के उपयोग के लिये मिला है।

आप सभी जानते हैं रावण कितना बड़ा राजा तीन खण्ड का अधिपति, अट्ठारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी था किन्तु दुरविचार और दुर्भाव से सारी सेना और सारा वैभव मिट्टी में मिल गया।

इक लख पूत सवा लख नाती, ता रावण घरदिया ना बाती।

रावण सीता का हरण करके ले गया था सीता को अपनी पत्नी बनाना चाहता था किन्तु उसका संकल्प उसे बार-बार रोक रहा है। उसने संकल्प लिया था कि कोई स्त्री यदि स्वयं उसे नहीं चाहेगी तो उसे हाथ नहीं लगाऊँगा। अतः सीता को प्रसन्न करने के लिए अनेक उपाय किए किन्तु सीता जैसी महासती रावण को कैसे चाहने वाली थी, सीता ने जब रावण को नहीं चाहा तो रावण ने अपनी अनेक विद्याओं का प्रयोग किया। विभिन्न रूप बदले किन्तु असफलता हाथ लगी तब काल नेमि से कहा कोई उपाय बताइये जिससे सीता मुझे चाहने लग जावे।

काल नेमि ने कहा राजन् सीधा-सा तो उपाय है आपके पास अनेक विद्यायें हैं आफ राम का ही रूप क्यों नहीं बना लेते हो? राम का रूप देखकर सीता तुम्हें चाहने लगेगी। तब रावण ने कहा यह तो मैंने करके देख लिया इससे सम्भव नहीं।

काल नेमि ने पूछा क्यों महाराज?

तब रावण ने कहा, जब मैं अपने आप को राम के रूप में परिवर्तित करता हूँ तो मेरे विचार भी राम जैसे हो जाते हैं और फिर मुझे सीता परस्त्री यानि माँ और बहिन की भांति नजर आने लगती है। यह है इंसान की महानता का प्रभाव, यह है इन्सान के विचारों का प्रभाव और जीवन के आदर्श का प्रभाव, इंसान की इंसानियत का प्रभाव। इस संदर्भ में कहा गया है–

दुनियां में चारों ओर आदर्श के गीत गाये जाते हैं।
आदर्श वान दुनियां में बहुत कम ही पाए जाते हैं।।
आदर्श खोजने के लिए कहाँ जाओगे प्यारे भाई।
स्वयं के आदर्श तो स्वयं ही बनाए जाते हैं।।

प्यारे बन्धु! उस समय रावण ने सीता के साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया था। मात्र एक बार बुरी निगाह से देखा था दुर्भावना की थी जिसका परिणाम वह नरक गति में सड़ रहा है, और कब हुआ था रावण? तब से लेकर आज तक उसके पुतले जलाए जाते हैं। आज कोई पुत्र का नाम रावण नहीं रखता लोग रावण के नाम पर थूकते हैं किन्तु प्यारे भाई यह अधिकार किसे है जो उस रावण वृत्ति से रहित हो,

कवि ने कहा–

घर-घर लंका, घर-घर रावण, इतने राम कहाँ से पाएँ।
घर-घर मथुरा, घर-घर कंसा, इतने घनश्याम कहाँ से लाएँ।।

पुतला दहन का अधिकार किसे?

आज हम देखना चाहते हैं कितने लोग हैं जिन्हें रावण का दहन करने का अधिकार है। अपने हृदय पर हाथ रखकर स्वयं से पूछो कि आपने किसी सीता की ओर बुरी निगाह से तो नहीं देखा है जो इस सूत्र में खता उतरे वही सबसे पहले रावण के पुतले में आग लगाए। अन्यथा वह स्वयं का पुतला बनाकर पहले दहन करे रावण का नहीं।

प्यारे भाई! जब रावण का पुतला जलाया जाता है उस वक्त उस स्थान पर यदि उसकी माँ वहाँ पर हो तो उसे कैसा लगेगा और आपके भाई बन्धु-बेटे रावण के समान कृत्य करते हैं उन्हें कौन-सी सजा मिलनी चाहिए? औरों के बेटे का पुतला जलाने में या बेटा जलाने में आपको आनन्द आता है, जरा सोचो उस स्थान पर आपके बेटे को या बेटे के पुतले को जलाया जाए तो आपके हृदय पर क्या बीतेगी?

अपने हृदय में श्रद्धा के फूल खिलाना है
अन्तर मन में ज्ञान के दीप जलाना है
पुतला जलाते आए हैं सदियों से रावण का
अब अन्दर बैठे हुए रावण को जलाना है।

तो आज सभी प्रतिज्ञा कर लें कि रावण का पुतला नहीं जलाएँगे और रावण का पुतला जलाने की भावना है तो पहले राम जैसा चित्त और चारित्र प्राप्त करेंगे क्योंकि दुनियाँ में चित्र (मूर्ति) की नहीं चारित्र की पूजा की जाती है। मूर्ति नहीं मूर्तिमान पूज्य

माना जाता है। आदर्श और आदर्शवान की पूजा की जाती है। संत नहीं साधना की पूजा की जाती है।

प्यारे बन्धु! हम आपसे पूछ रहे हैं कि आप जिन्दगी में क्या खोज रहे हो? जिन्दगी की खोज में जीवन का अर्थ और मूल्य छुपा है। यदि कोई जीवन में भोग खोजे, दौलत अर्थात् कागज के टुकड़े खोजे तो उसकी जिन्दगी का मूल्य उसकी चाहत से अधिक क्या होगा? छुद्र की खोज में लोग छुद्र हो जाते हैं और जिन्दगी की सम्पदा को व्यर्थ खो बैठते हैं।

जिन्दगी बनाने के लिए विषय व्यसनों को छोड़िए
अपने जीवन में कषाय और दुष्कर्मों से नाता तोड़िए
भोगों को भोगते हुए तो सदियाँ बीत गई
अब भोग को छोड़कर विशद योग से नातो जोड़िए।

जीवन यात्रा का प्रारम्भ-

यह जीवन एक पड़ाव है, ठहराव है यहाँ से यात्रा शुरू करो। बहुत ही सोच-समझकर यात्रा प्रारम्भ करने की आवश्यकता है। यदि भूल से दिशा बदल गई तो सारा काम गड़बड़ हो जायेगा। जीवन को सफल बनाना है तो अवसर का लाभ लेना चाहिए, अवसर पर सचेत होना चाहिए, जागना चाहिए। **''जबजागे तभी सवेरा''** वृक्ष में फूल आते हैं चले जाते हैं जीवन में सुख-दुःख आते हैं चले जाते हैं, लोग आते हैं चले जाते हैं। आगमन गमन को साथ लेके चलता है। यह प्रकृति का नियम है दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिन। दिन शाश्वत नहीं रहता है तो रात्रि कैसे शाश्वत रहेगी? यदि कुछ शाश्वत है तो वह है चेतन और मोक्ष। मोक्ष पो के लिए जिन्दगी में कुछ अपूर्व कार्य करना पड़ता है। हम आपसे पूछते हैं स्वर्ग कौन-कौन जाना चाहते हैं? किन्तु स्वर्ग जाने के लिए आपको मरना पड़ेगा बोलो कौन मरने के लिए तैयार है? सभी के चेहरे नीचे हो जाते हैं। चेहरे फीके पड़ जाते हैं। **''बगैर मरे स्वर्ग नहीं मिलता।''** जिन्दगी को बनाने के लिए विषय और व्यसन, कषाय और दुष्कर्म को छोड़ना पड़ेगा, भोगों का व्योग करना होगा।

प्यारे बन्धु! जीवन एक महान सुअवसर है। जीवन परमात्मा का पुरस्कार है। कुदरत की बड़ी सौगात है, प्रकृति का उपहार है। आदमी जो होना चाहे वह हो सकता है। उसे सिर्फ अपने को, अपनी आदतों को साधने की जरूरत है। अगर साधना में अंगुलियाँ आ जाये तो लोग जिसे तुबड़ी कहते हैं। वह सारंगी बन सकती है। अभी तुम तुमड़ी हो, तुम्हें सारंगी बनना है। बांस की पोंगरी से बांसुरी बनना है। पोंगरी का कोई महत्त्व नहीं होता है लेकिन जब वह बांसुरी बन जाती है तो वह दुनियां का प्यार तो

पाती ही है, दुनिया को आह्लादित भी करती है। तुम तो महज एक बांस हो। बांस से बांसुरी तो बनती ही है। बांस अर्थी बनाने के काम भी आता है। अगर तुमने जीवन का वास्तविक अर्थ नहीं समझा तो जीवन अर्थी बन जायेगा और जीवन को अर्थी बनाना–यह जीवन के साथ किया जाने वाला एक क्रूर मजाक होगा। उपहास होगा, विनाश होगा, इससे जीवन का ह्रास हो जाएगा।

अभी तुम सिर्फ एक कली हो, तुम्हें फूल बनना है। अभी तुम्हें खिलना है और खिलकर महकना है। कली में महक नहीं होती, महक, गंध तो फल में हुआ करती है। अभी तुम्हारे अंदर संयम और आचरण की महक पैदा होना बाकी है।

कहीं ऐसा न हो कि यह कली खिलने से पूर्व ही काल-कवलित हो जाये। अगर कदाचित् ऐसा हुआ तो तुम्हारा यहाँ आना ही व्यर्थ हो जायेगा। तुम फूल बनकर ही झड़ना, तुम संयम की खुशबू बिखेरकर ही मरना। भगवान से अगर प्रार्थना करने का कभी अवसर मिले तो एक यही प्रार्थना करना कि हे भगवान्! यह कली फूल बनकर ही झड़े। अपने आस-पास के वातावरण को सुरभित करके ही झड़े। यह जीवन एक ऐसा मधुर फल बने जो लोगों की क्षुधा शांत करे और मोक्ष के लिए पुण्य का बीज बनकर खेतों की शोभा बढ़ाए।

किसी कवि ने कहा है–

तुम कहीं से एक काढ़ी तो खोजकर लाओ।
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है।

तुम केवल मिट्टी नहीं हो, ज्योति भी हो। तुम एक ऐसे दिये हो जिसमें घृतमय बाती भी है। तुम दीवाली भी हो और होली भी हो। अगर तुमने अपने भीतर की ज्योति को पहचान लिया तो तुम ही दीवाली हो और अगर तुम्हारी जो नियति है वह तुम हो गए तो तुम ही होली हो। तुम अनंत की संभावना हो। मनुष्य वह चौराहा है, जहाँ से सभी जगह के लिए रास्ते निकलते हैं। चतुर्गति के द्वार खुले हैं। तुम्हें प्रभु होने की पगडंडी पकड़नी है। छोटे-छोटे नियमों, अणुव्रतों की पगडंडी पर चलकर इंसान महाव्रतों के राजपथ को पकड़ सकता है और उस पर चलकर वह इंसान भक्त से भगवान बन सकता है।

अणुव्रत, महाव्रत आत्म कल्याण का रास्ता है,
यह पूर्ण खुराक नहीं, सुबह का नाश्ता है।

बन्धुओं! जीवन का एक-एक पल महत्त्वपूर्ण है। उसे व्यर्थ की निंदा, आलोचनाओं, व्यर्थ के क्रिया-कलापों में मत जगाओ। शांत मन से बैठकर घड़ी भर भगवान का भजन करो।

तीर्थंकरों का सुमिरण करो, पंच परमेष्ठियों का ध्यान करो, बारह भावना का चिंतन करते हुए सोलह कारण भावना भाओ। इससे मन को बड़ी शांति व चैन मिलेगा। थोड़ा-सा जीवन बचा है अब भी अगर भजन न किया तो फिर कब करोगे?

तुम कहते हो–क्या करें, फुर्सत नहीं मिलती, समय नहीं निकलता। ध्यान रखो भजन और कीर्तन के लिए, धर्म-ध्यान और सत्संग के लिए समय निकलता नहीं है, निकालना पड़ता है। अगर तुम यह सोचते हो कि एक दिन मुझे संसार के क्रिया-कलापों, कर्मों से फुर्सत मिल जायेगी तो धर्म करेंगे यह तुम्हारी भूल है। किसी को संसार से फुर्सत कभी नहीं मिलती। समय तो निकालना पड़ता है। नौकरी करने वाला कहता है रिटायर होकर भजन करूंगा और खेती-दुकान वाला कहता है कि बच्चे बड़े होने पर भजन करूंगा किन्तु जीवन यूं ही सोचते-सोचते व्यतीत हो जाता है। तुम्हें तो फुर्सत मिलेगी नहीं। संसार में इतनी झंझटें हुआ करती हैं कि आदमी को चैन से खाने-पीने और बैठने-सोने तक का समय नहीं मिलता है, फिर भी तुम समय निकालकर कुछ न कुछ खा-पी लेते हो। समय निकालकर थोड़ा-बहुत आराम कर ही लेते हो। इसी प्रकार समय निकालकर थोड़ा-बहुत भजन, सत्संग भी कर लिया करो। भैया, यह भजन तुम्हारे बहुत काम आयेगा।

जहाँ सत्संग होता है, वहाँ पर नित्य जाओ तुम।
हमें फुरसत नहीं कहकर, ये मौका मत गवाओ तुम।।
अरे! सत्संग करने की, कोई ना उम्र होती है,
अमर ये दीप होता है, कभी बुझती ना ज्योति है।
इसी ज्योति से जीवन की, सदा ज्योति जलाओ तुम।

हमें...

जरा अनुभव तो कर देखो, कि क्या बदलाव आया है?
कपट सब दूर होता है, हृदय निर्मल हो जाता है।
इन्हीं सत्संगियों के संग, सदा जीवन बिताओ तुम।

हमें...

कि मन एकाग्र करके तुम, सदा सत्संग को सुनना,
होके लवलीन भावों से, सुनहरे फूल को चुनना।
इसी सत्संग सागर में, सदा डुबकी लगाओ तुम।

हमें...

चढ़े इक बार फिर उतरे, नहीं सत्संग का ये रंग,
बिना प्रभु की कृपा मिलती, नहीं सत्संगियों का संग।

विशद संतो की सेवा कर, सदा सानिध्य पाओ थउण।

हमें...

कभी रविवार हो, छुट्टी का दिन हो, आज दुकान-ऑफिस बंद है तो यह मत सोचना कि चलो आज कहीं बाहर घूम आते हैं। पिकनिक या टॉकीज जाकर पिक्चर देख आते हैं। भैया! अगर तुमने ऐसा कुछ किया तो यह समय की हत्या होगी। छुट्टी है तो कहीं मत जाना। स्वाध्याय या भजन में मन न लगे तो चादर तानकर सो जाओ। मन को इधर-उधर मत भटकाओ। जिनेन्द्र भगवान का भजन करने से जिह्वा पवित्र होती है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि जीभ पाप का स्थान है। तुमने कभी अनुभव लेना चाहते हो तो ले नहीं पाते उस समय मन में दुनियां भर के ख्याल, दुष्ट विचार आने लगते हैं। पता है इसका कारण? इसका कारण इतना ही है कि आप जैसे ही भगवान का नाम लेते हैं तो पाप जीभ को पकड़ लेते हैं और कहते हैं–खबरदार। जो तूने भगवान का नाम लिया तो हम कहाँ जाएँगे हमारा तो ठिकाना ही समाप्त हो जाएगा क्योंकि परमात्मा का नाम लेने से यहाँ धर्म का वास हो जाएगा।

वैसे धर्म छुट्टी के दिन नहीं संसार से छुट्टी पाने के लिए किया जाता है। सरकार भी इसका समर्थन करती है वह सप्ताह में एक दिन छुट्टी देती है। वह धर्म कार्य हेतु ही देती है तथा 60 वर्ष की उम्र में रिटायर कर देती है तथा पेन्शन देती है कि आपने समाज सेवा तो बहुत ही, परोपकार तो बहुत किया, शरीर और धारियों की सेवा तो बहुत की। अब आप परमात्मा का ध्यान करते हुए आत्म साधना करो जिससे संसार के इन दुःखों में यह नौकरी पुनः न करनी पड़े। औरों की दासता स्वीकार ना करनी पड़े, क्योंकि औरों की नौकरी से मरण अच्छा कहा गया है। सुभाषित कार कहते हैं–

नरके गमनं श्रेष्ठं दावाग्नौ दहने वरम्।
वरं प्रापतनं चाब्धौ, न वरं पर शासनम्।।

बीता हुआ और निकली हुई बात पुनः वापिस नहीं मिलती है। अतः जीवन का सदुपयोग करना है–

जो रात गई वह रात गई, वह रात न वापिस आती है।
जो बात गई वह बात गई, वह बात न वापिस आती है।
जो प्रातः गई वह प्रातः गई, वह प्रातः न वापिस आती है।
बारात गई दुल्हन लेकर, बारात न वापिस आती है।

अपराधी कौन?

पूज्य आचार्य श्री ने एक घटना सुनाते हुए कहा–एक बार एक स्त्री रात्रि के

समय अपने घर पर नहीं पहुँची। सुबह पहुँचने पर उसके पति ने उससे पूछा रात्रि में कहाँ रही? उसने बताया मैं अपनी बचपन की सहेली के यहाँ पर रही। पति ने कहा तुम झूठ बोल रही हो और अपने घटना के निपटारे के लिए पति पंचायत कर बैठा। सुबह पंच एकत्रित हुए और पंचों ने न्याय दिया इस बेहया स्त्री को चौराहे पर खड़ा करके सभी एक-एक पत्थर इसके सिर पर मारेंगे। प्रस्ताव पास हो चुका था। स्त्री को चौराहे पर ले जाया गया, लोग अपने-अपने हाथों में पत्थर लिए चौराहे की ओर बढ़ रहे थे। तभी एक महात्मा जी वहाँ से गुजर रहे थे उन्होंने देखा यह सब क्या हो रहा है? वहाँ पर जाकर पूछा क्या बात है? यह क्या हो रहा है? लोगों ने सारी दास्तान सुना दी।

तब महात्मा जी ने कहा अवश्य स्त्री ने अपराध किया है उसे दण्ड मिलना ही चाहिए किन्तु सबसे पहले पत्थर कौन मारेगा? तब लोगों ने कहा महात्मा जी आप ही बता दीजिए कौन सबसे पहले पत्थर मारे। आप जिसकी ओर इशारा कर देंगे पहले वही व्यक्ति स्त्री से सिर पर पत्थर मारेगा। महात्मा जी ने कहा। सभी के लिए स्वीकार है, सभी ने एक स्वर में कहा–हाँ स्वीकार है।

तब महात्मा जी ने कहा जिसने अपनी जिन्दगी में कोई अपराध न किया हो जो कभी रात्रि में अपने घर से बाहर न रहा हो, वह व्यक्ति सबसे पहले पत्थर मारेगा, सभी के चेहरे पीले पड़ने लगे, नीचे देखने लगे, कोई पत्थर मारने को तैयार नहीं क्योंकि **''कोई दूध का धुला नजर नहीं आया।''**

विश्व में कौन है जो भागों में न जिया हो।
भोगी कौन है जिसने कड़वा घूट न पिया हो।।
इन्सान दोषों का खजाना है प्यारे भाई।
कौन सा इन्सान है जिसने अपराध न किया हो।।

सभी शांत थे, खामोशी छाई थी। खामोशी को तोड़ते हुए महात्मा जी ने कहा भाई तुम्हारी पत्नी है तुम सबसे पहले पत्थर मारने के लिए आगे आओ क्योंकि शायद आपने अपने जीवन में कोई अपराध नहीं किया होगा। अच्छा बताइये इसका क्या अपराध है? तब उस व्यक्ति ने कहा यह स्त्री रात भर घर नहीं आई सुबह आने पर इससे पूछा तू रात भर कहाँ रही तो वह अपनी सहेली का नाम ले रही है जबकि यह गलत है।

तब महात्मा जी ने पूछा आप यह कैसे कह रहे हैं कि यह स्त्री अपनी सहेली के यहाँ नहीं रही?

तह उस व्यक्ति ने कहा जिस सहेली का नाम यह ले रही है उसके यहाँ पर तो

रात भर मैं रहा। मैं स्वयं

ही इसका सबूत हूँ। गवाह हूँ। अब आप सोच लीजिए स्त्री सहेली के यहाँ रही या नहीं वह तो अपराधी है दण्ड की भागीदार है किन्तु पति स्वयं पराई स्त्री के पास रहा उसके लिए कोई दण्ड नहीं, अब बताइये पहले पत्थर किसके सिर पर बरसाए जाने चाहिए? स्त्री के या पति के।

आज दुनियां इस प्रकार के अपराध और अपराधियों से भरी पड़ी है। कहा भी है कि–

पापी कहलाता है वह, जो खुलकर पाप करता है।
महापापी कहलाता है वह, जो परदे में बिगड़ता है।।

विचार नहीं बुद्धि श्रेष्ठ है–

इंसान अपने कर्मों का ताना-बाना अपने विचारों के आधार पर धारण करता है और विचारों का उद्गम मस्तिष्क में होता है। हर घड़ी मस्तिष्क में विचारों की तरंगें उठती रहती हैं। मानव मस्तिष्क विचारों का कारखाना है। मन वह सिनेमा घर है जिसमें निरंतर फिल्म चलती रहती है। मन **अंधेर नगरी का अंधा राजा** है। मन पीपल के पत्ते की तरह निरन्तर हिलता रहता है।

विचार सद्बुद्धि के कायल होते हैं जहाँ सद्बुद्धि अपना हाथ खींच लेती है वहाँ विचार अधोगति की ओर जाने लगते हैं। अतः विचारों के लिए सद्बुद्धि का सहयोग नितान्त आवश्यक है। पंचतंत्र में श्लोक आया है उसमें बुद्धि की श्रेष्ठता दर्शाते हुए कहा है–

वरं बुद्धि न स विद्या, विद्यायाधि गरीयसी।
बुद्धि हीनः विनस्यन्ति यथा ते सिंह कारकः।।

अर्थात्-विद्या से बुद्धि श्रेष्ठ है। अतः बुद्धि का सद् उपयोग करना चाहिए जैसे–बुद्धि से हीन सिंह की रचना करने वाले विनाश को प्राप्त हुए। सारांश यह है कि 4 मित्र वाराणसी से पढ़कर वापिस लौट रहे थे। (1) पहला लकड़ी परीक्षण में प्रवीण। (2) दूसरा लकड़ी की मूर्ति गढ़ने में प्रवीण। (3) तीसरा रंग भरने में प्रवीण। (4) और चौथा ज्योतिष्क में प्रवीर्ण था। चारों मित्र कहीं जा रहे थे कि रास्ते में रात्रि होने से जंगल में रुके। रात्रि में भय के कारण तीन-तीन घण्टे की ड्यूटी लगाई गई। प्रथम मित्र ने 3 घण्टे में उत्तम किस्म की लकड़ी एकत्रित की और समय होते ही दूसरे मित्र को जगाकर सो गया। दूसरे मित्र को नींद न आवे अतः लकड़ियों से सिंह बनाकर तैयार कर दिया। समय पूर्ण होने पर तीसरे मित्र ने, अपने ड्यूटी के काल में विभिन्न प्रकार के रंग भरे और समय पूर्ण होते ही चौथे मित्र को जगाकर सो गया। चौथे मित्र ने

सामने रखे हुए शेर को देखा और अपने ज्योतिष्क ज्ञान की परीक्षा हेतु विचार किया। क्यों न इस जानवर में जीवन डाल दिया जाए, परीक्षा भी हो जाएगी। उसने अपनी विद्या के बल से उसमें जीवन डाल दिया। सिंह जीवित होते ही चारों मित्रों को खा गया। बुद्धि का प्रयोग न होने से विद्यावान मित्र जीवन से हाथ धो बैठे। जीवन में ज्ञान से अधिक श्रेष्ठ है बुद्धि। बुद्धि के चमत्कार से इंसान आसमान में भी उड़ जाता है और जमीन पर भी निवास कर लेता है। बुद्धि से आत्म विश्वास जागता है। आत्म विश्वास के बल पर इंसान हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है। बुद्धि वह मानसिक शक्ति है जो तन, वचन और मन सभी को पुष्पित करती है तथा इस संसार में लोगों से स्नेह प्राप्त कराती है। बुद्धिहीन के लिए हिताहित तथा योग्य और अयोग्य कार्य का ज्ञान नहीं रहता और खोटे कार्य करने के लिए बुद्धिहीन तैयार हो जाता है। तत्पर हो जाता है।

आचार्य श्री ने एक घटना के माध्यम से अपनी बात करते हुए कहा–समुद्र में एक नाव दूर देश की ओर जा रही थी अनेक यात्रियों के साथ उसमें एक फकीर भी बैठा था। कुछ शरारती व्यक्ति उस फकीर को अनेक प्रकार से चिढ़ाने लगे, परेशान करने लगे। संध्या का समय हुआ तो फकीर परमात्मा की प्रार्थना में लीन हो गया। शरारती लोगों ने सेचा फकीर शांत हो गया है अब कुछ नहीं कर सकेगा। उसे चिढ़ाते हुए उसके ऊपर थूकना प्रारम्भ कर दिया। फल खाने के बाद छिलके फकीर के ऊपर फैंकना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ तक कि सिर पर जूते-चप्पल इत्यादि फैंकना प्रारम्भ कर दिया। फकीर तो परमात्मा की परम आराधना में लीन था। उसकी आँखों में प्रेम का झरना झर रहा था। अन्दर में शांति और मन में करुणा के भाव उमड़ रहे थे शैतानों की अज्ञान दशा पर। तभी आकाशवाणी हुई, हे फकीर! आपकी समता-क्षमता धन्य हो, आप कहें तो हम आपकी रक्षा करते हुए नाव उलट दें, जिससे सभी समुद्र में डूब जाएंगे।

जब-जब धर्म और धर्मात्मा पर संकट आया तो देवों ने रक्षा की यह सोचकर कि यदि धर्मात्मा की रक्षा नहीं की जाएगी तो लोगों का धर्म के प्रति विश्वास हट जाएगा।

आकाशवाणी सुनकर लोग घबरा गये और फकीर का ध्यान समाप्त होते ही फकीर ने ऊपर सिर करते हुए कहा मेरे प्यारे प्रभु! यह क्या कर रहे हो, यदि परमात्मा तू पलटना ही चाहता है तो इन भोले प्राणियों की बुद्धि पलट दे। नाव पलटने से क्या होगा? पुनः आकाशवाणी हुई हम आपकी महानता पर बहुत खुश हैं। वह व्यक्ति अपनी गलती पर पश्चाताप करते हुए फकीर के चरणों में गिरकर क्षमा याचना करने लगे। एहसान के भार से सिर ऊँचा नहीं कर पा रहे थे। कहा भी है–

गर मारना चाहो किसी को, तो मार दो एहसान से।
क्या मिलेगा गर किसी को, मार दोगे जान से।।
जान से मारा गया, वापिस कभी आता नहीं।
एहसान का मारा कभी भी, सर उठा पाता नहीं।।

बुद्धि इंसान को जीना सिखाती है। लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग दिखाती है। प्रेम और सहृदयता को जन्म देती है। धर्म और सद्भावना का बीजारोपण करती है।

किसी यात्रा को ठीक से जान लें कि हम कहाँ पहुँचना चाहते हैं? और यह भी जान लें कि यात्रा में आने वाली कठिनाइयाँ और श्रम हमारे झेलने योग्य भी हैं या नहीं। किसी कार्य को करने के पूर्व यह सोच लें कि हम जो कार्य कर रहे हैं। वह हमारे करने योग्य है या नहीं और हम जो कार्य कर रहे हैं उसका प्रतिफल नहीं होता है और कभी ऐसी परिस्थिति के बीच में फंस जाता है कि सारे जीवन को बर्बाद कर देता है। जीवन भर पश्चाताप करना पड़ता है। एक छोटी-सी गलती से जीवन भर ठोकरें खानी पड़ती है।

इन्सान का जीवन छोटा है, रात्रि सीमित है, समय अल्प है, अतः जो विचार और बुद्धि पूर्वक सावधानी और सजगता से कार्य करते हैं वही जीवन में सफलतम लक्ष्य तक पहुँच पाते हैं।

दिव्य विचार दिव्यता प्रदान करते–

दिव्य विचार और श्रेष्ठ कार्य को सभी स्वीकार करते हैं। इससे इन्सान का स्वयं तो उत्कर्ष होता ही है औरों का भी हित होता है। सद्विचार करने वाला कभी किसी का अहित करने की कल्पना भी नहीं कर सकता उसकी हमेशा प्रार्थना रहती है–

''असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय्
मृत्योर्मा अमृतं गमय''

हे परमात्मा! मुझे असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो अथवा यो कहें–

सुखी रहें सब जीव जगत् के, कोई कभी न घबड़ावें।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावें।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें।।

इस तरह दिव्य और आशामय विचारों का जिन्दगी में शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और सांसारिक उन्नति पर महान दिव्य प्रभाव पड़ता है। हमारे अंतर में

निरन्तर विचारों की लहरें उठती हैं जो हमें सदाचार की ओर बढ़ाती हैं।

हम अपने मन मंदिर में उन्हीं विचारों को प्रवेश दें जो हितकर हों जिससे हमारी क्षमता में वृद्धि हो यदि एक बार हमने अपने मन-मंदिर में शुभ और आनन्ददायक चित्र देखने का अभ्यास कर लिया तो हम निश्चय ही उन बुराइयों से दूर रहेंगे जो हमारी शांति और आनन्द को नष्ट कर जिन्दगी को नीरस और अस्वाद बनाती है, जिन्दगी को गन्दगी में परिवर्तित करती है।

विचारों के बड़े मजबूत पंख होते हैं, आते हैं और उड़ जाते हैं, विचारों की लहरों को अधिकांश लोग पकड़ नहीं पाते हैं जिसका मुख्य कारण है प्रमाद, विचारों की सार्थकता तभी है जब हम उन पर अमल करें, जीवन में प्रयोग करें।

कथनी के अनुरूप करनी फल देती–

किसी ने कहा है विचार कितना ही अच्छा क्यों न हो यदि क्रियान्वयन न हो तो वह गर्भपात के समान है, हमारा जीवन तभी प्रभावित होता है जब हम अपने विचारों को अपने क्रियानुरूप ढालते हैं या सद्विचार से जीवन धारा प्रवाहमान करते हैं। एक बार संत के पास एक व्यक्ति आया और बोला-हे गुरुदेव! मेरे लिए आपकी देशना सुनते-सुनते इतना समय बीत गया आप इतना अच्छा उपदेश देते हैं, इतनी अच्छी-अच्छी बातें सुनाते हैं। क्रोध अन्धा बनाता है, जहर की भाँति है, अग्नि बनकर जलाता है, अतः क्रोध को जीतो, मान-अहंकार पत्थर की भांति है जो इन्सान के दिल को कठोर बनाता है। मायाचारी छल दूसरों को नहीं स्वयं को छलता है। लालच बुरी बला है इत्यादि लेकिन हमारे अन्दर में नहीं उतरती। कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, बात-बात में कषाय जागृत हो जाता है तब मुनिराज ने कहा कफी समय से प्रवचन सुन रहे हो। भक्त ने कहा–हाँ, महाराज।

कोई असर नहीं हुआ–जरा भी नहीं।

तब महाराज ने पूछा कहाँ पर रहते हो? जी म.प्र. में, पुनः पूछा म.प्र. में कहां पर रहते हो–उत्तर मिला सागर में। पुनः पूछा सागर जाने में कितना समय लगता है–उत्तर मिला पैदल चलने में 2 माह, बस से जाने में 2 दिन, ट्रेन से एक ही दिन में पहुंच जाते हैं इत्यादि। पुनः पूछा यहाँ पर बैठे-बैठे पहुँच सकते हो? उत्तर मिला चलेंगे तभी तो पहुँचेंगे। तब महाराज ने कहा–मेरी बातों पर अमल करोगे तभी तो प्रभाव पड़ेगा। दुनियां में कुछ लोग अतीत के विचारों में डूबे रहते हैं। कुछ भविष्य के स्वप्न में खोये रहते हैं। जिन्दगी के उत्थान में दोनों ही द्योतक हैं। वर्तमान ही वर्धमान बनाने वाला है, उच्चता प्रदान करने वाला है।

जो वर्तमान को सम्हाल लेता है उसके भूत और भविष्य दोनों सम्हल जाते हैं

किन्तु वर्तमान को सम्हालना, संवारना बड़ा मुश्किल है। किसी ने कहा है–

''काल पंख लगा कर उड़ जाता है'' एक बार एक विशाल प्रदर्शनी लगी हुई थी उसमें विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ रखी गई थीं। एक मूर्ति इस प्रकार की थी जो सुन्दर मनुष्याकृति की थी। सिर पर बाल मुख के आगे चेहरे को ढके हुए थे और पैरों में पंख लगे हुए थे। चित्रकार से पूछा यह चित्र किसका है तब चित्रकार ने बताया यह चित्र समय का है।

इसका मतलब है कि समय आंखों को ढक देता है और पैरों में पंख लगाकर उड़ जाता है।

समय नदी के बहते हुए जल की भांति है जिस जल को हम देखते हैं वह पल भर में कहा निकाल जाता है। इसी प्रकार मन में आये शुभ विचारों पर शीघ्र ही अमल करना चाहिए। हमें अपने मनोभावों के, विचार प्रवाह को और श्रेष्ठता को दिव्यता की ओर अग्रसर रखना चाहिए।

इस बात पर हमेशा विचार करना चाहिए कि वह कौन-सा दिव्य पदार्थ है दिव्य कार्य है जो हमें ऊँचा उठा सकता है, आध्यात्मिकता के उच्च शिखर तक पहुंचा सकता है। विचार वह निर्मल ज्योति है जो हमारे अन्तःकरण से निकलकर जीवन को प्रकाशित करती है।

हमारे विचार बन्द कलियों में दबी पंखुड़ियों के समान हैं जो कभी न कभी कहीं न कहीं समय आने पर अवश्य ही खिलती हैं और अपनी सुरभि तथा सुन्दरता से सम्पूर्ण वातावरण को मुग्ध कर देती हैं, खुशबू से भर देती हैं।

यह जिन्दगी परमात्मा प्रदत्त श्रेष्ठ उपहार है। प्राणी जगत में सर्वश्रेष्ठ है। परमात्मा के द्वार का प्रहरी है। विराट का स्वामी है। विश्व का दृष्टा और शृष्टा है, अनन्त का खोजी है, किन्तु इस प्रकार की दिव्यता को पाकर भी अपने ज्ञान और बुद्धि का उपयोग निःसार और मृत कल्पना जाल में, व्यर्थ के बकवास और फिजूल के वार्तालाप में बुद्धि और समय का दुरुपयोग करते हैं। औरों के दिल और दिमाग को ध्वस्त कर देते हैं। परेशान कर देते हैं। एक स्थान पर कहानी पढ़ी थी–

एक ग्रामीण था ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था। छोटे से गाँव में रहता था। एक दिन अचानक बीमार पड़ गया। घरेलू उपचार से ठीक नहीं हुआ तो उसने सोचा बम्बई जाकर डॉक्टरों को दिखाना चाहिए वहाँ जाने को तैयार हुआ। मित्रों ने कहा-भाई भोला बम्बई का मामला है, वहाँ सम्हलकर रहना और हाँ, डॉक्टर से सारी बात विस्तारपूर्वक समझ लेना, परहेज इत्यादि के बारे में बारीकी से समझ लेना, बाद में कहीं परेशानी न हो।

भोला ने कहा—ठीक है आप लोगों की बात विशेष ध्यान रखूंगा और भोला मुम्बई के लिए रवाना हुआ।

मुम्बई में भोला ख्याति प्राप्त डॉक्टर से मिला। डॉक्टर ने हालचाल पूछा, जाँच-पड़ताल की, नाड़ी-परीक्षण कर ऐक्सरा किया और दवा दी तथा कहा–ये चार गोलियाँ हैं, सोने से पहले ले लेना। ध्यान रखना खटाई का त्याग करना होगा।

भोला—हुजूर! चारों गोलियां एक साथ खानी हैं या एक-एक करके खानी हैं कृपा कर बता दीजिए।

डॉक्टर ने कहा—कैसे भी खाओ, कोई फर्क नहीं पड़ता।

भोला ने पूछा—सर! गोलियाँ दूध के साथ खानी हैं या फिर पानी के साथ या चासनी के साथ।

डॉक्टर ने कहा—दूध के साथ ले सकते हैं।

भोला ने अगला प्रश्न पूछा—साहब! दूध ठंडा होना चाहिये गा गर्म किया हुआ होना चाहिए।

डॉक्टर ने अनमने से कहा—एकदम ठंडा, न गरम, बल्कि गुनगुना होना चाहिए।

भोला ने पुनः पूछा—साब! दूध कम करम किया हुआ होना चाहिए या अबला हुआ।

डॉ. ने कहा—उबाल कर ठण्डा किया हुआ श्रेष्ठ होता है।

भोला ने बगैर किसी विलम्ब के प्रश्न माला आगे बढ़ाई और पूछा–हुजूर, एक बात और बता दें कि दूध भैंस का होना चाहिए या गाय का।

पौष्टिक दूध कौन-सा होगा?

डॉ. ने झुंझलाते हुए कहा—अरे भाई! जो मिल जाए वही अच्छआ होगा, वही पौष्टिक होगा।

भोला ने कहा—नहीं हुजूर दरअसल मैं सारी बात विस्तार पूर्वक समझ लेना चाहता हूँ ताकि बाद में कोई गड़बड़ी न हो। आप मेहरबानी करके बता दें कि पौष्टिक कौन-सा रहेगा?

डॉ. ने कहा—ठीक है गाय का दूध ठीक रहेगा, क्योंकि वह सुपाच्य और हल्का होता है।

पुनः भोला ने कहा—हुजूर काली गाय का ठीक रहेगा या सफेद गाय का।

डॉ. ने कहा—कोई भी जो तुम्हारे घर पर हो।

भोला ने लगे हाथ एक प्रश्न और पूछ लेना उचित समझा।

उसने पूछा—हुजूर! दूध गिलास में लेकर पीना है या कटोरे मे डालकर पिया जाए।

डॉ. ने गुस्से में कहा—मूर्ख! अब यह भी बताा पड़ेगा।

बकवास मत करो, जरा-जरा सी बात पूछना पागलपन है।

भोला ने हाथ जोड़कर कहा—हुजूर, गुस्सा मत होइए, मैं ठहरा गाँव का गँवार। दरअसल मैं सारी बात विस्तारपूर्वक समझ लेना चाहता हूँ ताकि बाद में कोई गबड़बड़ी न हो। आप स्पष्ट करें कि दूध गिलास से पीना है या कटोरे से।

डॉ. ने चिल्लाकर कहा—न गिलास से पीना और न कटोरे से बल्कि बाल्टी से पीना है समझ में आया।

भोला ने कहा—बिल्कुल समझ गया हुजूर । बाल्टी जिसमें भैंस पानी पीती है पर हुजूर बाल्की की बात कही तो एक प्रश्न और उठ खड़ा हो गया।

डॉ. ने माथा ठोका और कहा—अब कौन-सा प्रश्न खड़ा हो गया तेरी खोपड़ी में शीघ्र बता?

भोला बोला—डॉ. साहब! मेरी भैंस तो बाल्टी भर पानी पीती है, क्या मुझे भी बाल्टी भर दूध पीना है।

डॉ. जोर से हँसा और बोला—मूख बेमौत मर जायेगा, पी मत लेना।

भोला ने कहा—हुजूर! इसलिए तो मैं सारी बात विस्तार-पूर्वक समझ लेना चाहता हूँ ताकि बाद में...। डॉ. साहब! आप वाकई में दयालु हैं। रहम दिल हैं, कृपावंत हैं। एक बात और बतायें कि दूध खड़े होकर पीना है या बैठकर।

डॉ. का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया, वह आग-बबूला हो गया। उसके मन में आया कि इसका हाथ पकड़कर, धक्का मारकर क्लीनिक से बाहर निकाल दूँ लेकिन तभी अपने को संतुलित करके बोला–देखो भाई! फालतू प्रश्न मत पूछो। मुझे और भी मरीज देखने हैं, अतः तुम जाओ, कल पुनः मिलना।

भोला ने कहा—ठीक है हुजूर, एक सवाल का जवाब और दे दें फिर चला जाऊँगा।

डॉ. साहब ने चले जाने की बात सुनकर राहत की सांस ली और कहा–पूछो, जल्दी पूछो क्या बात है?

भोला ने कहा—हुजूर! कैसे पूछूँ? पूछते हुए शर्म आती है।

डॉ. ने कहा—शर्म, कैसी शर्म? प्रश्न पूछने में भी शर्म आती है। ऐसी कौन-

सी बात है जिसे पूछने में शर्म आती है।

डॉक्टर को कुछ जिज्ञासा हुई कि आखिर प्रश्न क्या है जिसे पूछने में शर्म...

भोला ना कहा–हुजूर! दूध अपने हाथ से पिऊँ या पत्नी अपने हाथों से पिलाये।

यदि पत्नी अपने हाथों से पिलाये तो कोई हर्ज नहीं?

डॉ. के चेहरे पर कुछ हास्य उभरा तुरंत हँसी को दबाकर क्रोध में बोला–कोई हर्ज नहीं। और हां, अब बहुत हो गई।

लाओ मेरी फीस के बीस रूपये और यहाँ से जल्दी फूट लो। अब पलभर भी रुकना तुम्हारे लिए खतरे से खाली नहीं। निकालो फीस के बीस रुपये और जाओ यहाँ से।

भोला ने कहा–हुजूर, रुपये बंधे दूँ या फुटकर दूँ?

डॉ. ने अपना सिर पकड़कर दीवार पर दे मारा और फिर डंडा उठाकर भोला की तरफ लपका। डॉ. चिल्लाया, भागता है या नहीं? कमबख्त सुबह से सताने आ गया, जान खाने आ गया। अब जल्दी से भाग जा वरना मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। डॉक्टर ने भोला का हाथ पकड़ा और चक्का मारकर क्लीनिक से बाहर करने लगा तभी–

भोला ने कहा–हुजूर! आपकी फीस?

डॉ. ने कहा–रहने दो, कोई जरूरत नहीं, फीस-बीस की। उल्टे मुझसे बीस रूपये पकड़ो और मेरा पिंड छोड़ो। डॉ. ने दस-दस के दो नोट पकड़ा दिये।

भोला ने पूछा–हुजूर! पैदल जाऊँ या रिक्शे में बैठकर? रिक्शे से जाने में कोई खतरा तो नहीं।

डॉ. ने कहा–कोई खतरा नहीं, दस रूपये रिक्शे वाले को दे देना और दस रूपये की गोलियाँ खरीद लेना।

भोला ने दोनों नोट लिए और क्लीनिक से बाहर हो गया।

इधर डॉ. ने अपना पसीना पोंछा, सिर दर्द की दो गोलियाँ खाईं और मन ही मन सोचा झंझट मिटी, बला टली लेकिन दो मिनट ही हुए होंगे कि भोला फिर लौट आया और डॉ. से बोला–हुजूर! गुस्सा मत होना। मैं ठहरा गाँव का अनपढ़ निरक्षर, गंवार दरअसल मैं सारी बात विस्तारपूर्वक समझ लेना चाहता हूँ ताकि बाद में...। अतः एक बात और बता दीजिए बड़ी कृपा होगी आपकी। सिर्फ इतना बता दें कि कौन-सा नोट रिक्शे वाले को देना है और कौन-से नोट की दवा लेनी है? डॉ. ने नौकर से फाटक बंद करने को कहा–फिर चैन की सांस ली।

यहाँ से भोला गाते हुए आगे बढ़ जाता है–

चलना हमको गाँव हमारा वहीं ठिकाना है।
ये है अपनी दवा इसे तो दूध से खाना है।।
चलते-चलते भाई हम तो घर को जाएँगे।
हो जाएँगे स्वस्थ वहाँ पर मौज मनाएँगे।।

निराधार प्रश्न मत पूछो :

यह कहानी कितनी सत्य है या नहीं हम नहीं जानते लेकिन इतना अवश्य जानते हैं कि आज के आदमी पर यह कहानी पूर्णरूपेण घटित होती है। चरितार्थ होती है जिन प्रश्नों में कोई दम नहीं, कोई चेतना नहीं, कोई हार्दिकता नहीं, वे प्रश्न मुर्दा प्रश्न हैं, उधार के प्रश्न हैं। दिमाग खाऊ, उबाऊ प्रश्न हैं। तुम्हारे प्रश्न मौलिक नहीं होते हैं, इधर-उधर से चुराये हुए होते हैं उन्हीं को जीवन भर दुहराते रहते हो। जब भी कोई संत मुनि आते हैं वह प्रश्न उनके सामने ठोक देते हो, लेकिन याद रखना इस तरह के प्रश्नों के समाधान से जीवन की किसी समस्या का स्थायी समाधान नहीं होता है। बाईबिल में कहा है ''कर्म ही पूजा है'' जिसे सत्कर्म में रस आता है वही कर्म की महत्ता को जानता है और कर्त्तव्य मानकर करता है।

बगैर निष्ठा के कोई कार्य नहीं होता। निष्ठा से बड़े से बड़ा काम आसान हो जाता है। संतों से जीवंत प्रश्न पूछो, क्योंकि संत जीवंत हैं। संतों के पास केवल वाणी का विलास नहीं होता अपितु उनमें आवरण के दर्शन भी होते हैं। संत आचरण की जीवंत पाठशाला हैं। संत चलते-फिरते तीरथ धाम हैं और अभी तो तुम संतों से व्यर्थ प्रश्न करने बैठ जाते हो, लेकिन याद रखना कोई संत व्यर्थ प्रश्नों में रस नहीं लेते। जीवंत संत जीवन्त प्रश्नों के ही उत्तर देते हैं। हाँ, व्यर्थ का जीवन जीने वाले व्यर्थ के प्रश्नों में ही गहरा रस लेंगे, चर्चा करने बैठ जाएँ तो घण्टों निकाल देंगे, प्रणाम पर प्राण देते चले जायेंगे, लेकिन संत स्वयं प्रमाण होते हैं।

स्वयं की खोज-

कोऽहं कीदृग्गुणः क्वत्य किम्प्राप्य किं निमित्तकः।
इत्यूहा प्रत्यहं नो चेदस्थाने हि मतिर्भवेत्।।

हे मानव! प्रातः उठकर विचार करो। चिंतन करो एक क्षण शांत चित्त होकर अपने अन्दर में डुबकी लगाओ। स्वयं से पूछो ''मैं कौन हूँ?'' तो अन्तरात्मा से आवाज आयेगी। मैं पर द्रव्यों से भिन्न सिद्ध सदृश चैतन्य जीव हूँ। मुझमें कौन से गुण हैं? उत्तर मिलेगा–ज्ञान दर्शनादि गुण हैं। कहाँ से आया हूँ और क्या करना है? तो

उत्तर एक ही मिलता है निगोद आदि दुःख मय संसार में भ्रमण करते हुए इस मनुष्य गति में आया किन्तु अब संसार में ही गोते नहीं खाते रहना है बल्कि इन्सान हैं तो इन्सानियत के गुण प्राप्त करने हेतु कुछ करना है। स्वयं की जागृति करना है। कहा भी है–

संसार का दलदल शायद इन्सान को खलता नहीं।
मृत चिराग जलते चैतन्य चिराग जलता नहीं।।
कितने ठिकाने खोजडाले हमने संसार में रहकर।
सबका पता तो पाया पर स्वयं का पता मिलता नहीं।।

तो मैं कौन हूँ? यह जीवन की मूलभूत जिज्ञासा है। यह जीवन की ज्वलंत जिज्ञासा है और इसी जिज्ञासा का समाधान है–गीता। इसी जिज्ञासा का समाधान है–समयसार। इसी जिज्ञासा का समाधान है–बाईबिल और गुरुवाणी। दुनियां के तमाम धर्मशास्त्र मनुष्य को उसकी अस्मिता और अस्तित्व तथा चेतना का बोध कराते हैं और यही उनकी मानव जीवन में उपयोगिता है।

तो मैं कौन हूँ? यह जीवंत जिज्ञासा है। प्रश्न और जिज्ञासा में फर्क है। प्रश्न एकदम उथला होता है जबकि जिज्ञासा गहरी होती है। प्रश्न मस्तिष्क से उठता है, जबकि जिज्ञासा जिगर से, हृदय से जन्म लेती है। प्रश्न कौतुहल वश होता है, जबकि जिज्ञासा स्वभाविक होती है। जिज्ञासा एक होती है और उस एक ही जिज्ञासा के समाधान से जीवन की सम्पूर्ण जिज्ञासाओं का समाधान हो जाता है।

सत्य को वही इन्सान प्राप्त कर सकता है जिसके अन्दर संकल्प शक्ति है और जिसमें सम्पूर्ण आकांक्षाओं और वासनाओं को तिलांजलि दे रखी है। सत्य निष्पक्ष होता है और सत्य को पाना ही धर्म है। धर्म ही कर्म है, वक्तव्य नहीं, विचार नहीं, धर्म कर्म तभी होता है जब स्वत्व को पा लेता है। जो करते हैं वह पहले हो गये होते, सुवास देने के पूर्व फल बनना नितान्त आवश्यक है। फूलों को पाने के लिए लताएँ उगानी पड़ती हैं। उसी प्रकार आत्मा की खेती आवश्यक है।

सदाकत खुद-ब-खुद करती है शोहरत जमाने में।
कभी खुशबू भी कहती है? मुझे तुम सूँघ कर देखो।।

आत्मा में फूलों की सुवास पाने के लिए पर्वत हो या पठार जहाँ पर आप हैं वहीं पाया जा सकता है। स्वयं के एकांत में ही पर्वत हैं पठार हैं यह सत्य है कि पूर्व दशा में एकांत में ही सत्य और सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। चित्त जब सभी दिशाओं से विमुख हो जाता है, ज्ञानालोक में विचरण करने लगता है तभी अन्दर से धर्म के फूल खिलते हैं और जीवन परमात्मा के गुणों की सुवास से भर जाता है इस अनुभूति में ही

जीवन की सिद्धि व धर्म की उपलब्धि है।

इन्सान के सम्पूर्ण जीवन की मंजिल कर्त्तव्य निष्ठआ पर आधारित है। निष्ठा वह प्रज्जवलित दीप है जिसके आगे निराशा आदि का अंधकार टिक नहीं सकता। कर्त्तव्य निष्ठा से आदमी पर्वत की उच्चतम चोटी (शिखर) पर पहुँच जाता है। अगाध सागर को पार कर किनारे को प्राप्त कर लेता है।

कर्त्तव्य निष्ठा से दूर हटना जिन्दगी के साथ खिलवाड़ है। अपना मनोबल उच्च होना चाहिए।

अस्मतें याद आती हैं निकल जाने के बाद।
स्वयं को पाने की जिज्ञासा हुई है जमाने के बाद।।
हम तो भूले हुए थे अपने आपको प्यारे भाई।
जिन्दगी याद आई ठोकरें खाने के बाद।।

मानव जीवन आलोकित रहे इसके लिए स्वावलम्बन अत्यंत आवश्यक है लम्बी यात्रा स्वयं के कदमों पर भी सम्भव है। किराये की वैसाखियों पर नहीं। राह पर चलने के लिए हृदय में हौंसला और पैरों में दम चाहिए।

पत्थर दिल इंसानों पर उपदेश का असर नहीं होता।
मात्र जलवायु के सहारे जिन्दगी का बस नहीं होता।।
कब तक चलते रहोगे औरों के सहारे प्यारे भाई।
किराये की बैसाखियों से जीवन का सफर नहीं होता।।

जिसने भी ऊँचाई को पाया है वे आत्म निर्भर रहे। दृढ़ संकल्पित रहे। स्वावलम्बन के लिए प्रेम और उदारता भी आवश्यक है उससे सहयोग प्राप्त होता है। प्रेम के आधार पर प्राप्त हुए सहयोग में आत्मीयता होती है। आत्मीयता से कार्य में गति और श्रेष्ठता होती है।

आत्म चेतना को जब किसी महान ध्येय से जोड़ते हैं तो इन्सान को उस महानता की प्राप्ति होती है जो मानव जीवन को सफल और सार्थक करती है।

अध्यवसाय :

अध्यवसाय (पुरुषार्थ) जीवन की सफलता की कुंजी है जो परिश्रम की महिमा नहीं जानते वह अपने की पूर्ति के लिए प्रयत्न नहीं करते। उनके हाथ हमेशा विफलता ही लगती है। कार्य छोटा-बड़ा कैसा भी हो उसके लए उद्यम करना ही पड़ता है। बिना उद्यम के बिना हाथ-पैर हिलाए इन्सान कुछ नहीं कर सकता। जीवन एक संग्राम है जो जूझता है उसे सफलता प्राप्त होती है।

दैनिक जीवन में हमारे जो भी काम हैं वह पुरुषार्थ से ही होते हैं। इतिहास इसका साक्षी है चाहे चीन की दीवार हो या मिश्र के पिरामिड, ताजमहल हो या कुतुबमीनार, पर्वतों पर बने भव्य जिनालय हों या विभिन्न प्रकार के बने हुए महल हों। सभी घोर परिश्रम से ही तैयार किये गये हैं लोगों को एडी-चोटी का जोर लगाना पड़ा। सिर का पसीना पैरों तक बहाना पड़ा। सभी परिश्रम के ही मिष्ठफल हैं जगमगाती आभाएँ हैं।

आज चारों ओर देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि कुछ लोग प्रमादी हैं तो कुछ लोग महान पुरुषार्थी हैं, कर्मवीर हैं जो इतिहास का निर्माण करते हैं। कहावत है–इंसान जो कार्य करता है उसमें 10 प्रतिशत उसकी बुद्धि और 90 प्रतिशत उसका पुरुषार्थ कर्म पसीना होता है। बिना कर्म किए कुछ नहीं होता।

शमां जलकर भी बुझ सकती है,
किश्ती तूफां से भी निकल सकती है।
मायूस न करो अपने इरादे प्यारे भाई,
पुरुषार्थ करो तो संसार से मुक्ति मिल सकती है।

एक स्थान पर कहानी पढ़ रहे थे कहा गया था–एक बार एक किसान अपने खेत में हल चला रहा था। उसमें एक ओर तो बैल था दूसरी ओर उसकी स्त्री थी। संयोग से वहाँ का राजा उधर से निकला। उसने यह देखा तो उसे किसान की हृदय हीनता (क्रूरता) पर बड़ा क्रोध आया। उसने किसान के पास जाकर कहा ''तुम यह अनर्थ क्यों कर रहे हो?''

वह किसान बोला–''मेरा एक बैल मर गया है, पर खेत में जुताई करना जरूरी है। मैं क्या करूँ?''

राजा ने कहा–'रथ पर मेरी स्त्री बैठी है अपनी स्त्री को भेज दो, वह उससे एक बैल माँग लाए।''

किसान बोला–''मैं अपने काम को रोक नहीं सकता।''

राजा ने कहा–''काम मत रोको। स्त्री को भेज दो जब तक वह लौटकर आएगी तब तक मैं उसकी जगह काम करूँगा।''

किसान को पता नहीं था कि वह राजा है। उसने राजा को हल चलाने में जोत दिया। स्त्री को भेज दिया।

कहानी लम्बी है किस प्रकार किसान की स्त्री अनिच्छापूर्वक वहाँ गई और किस प्रकार रानी ने एक की जगह दो बैल दे दिये, लेकिन इस कहानी में आश्चर्यजनक बात यह है कि जितने समय राजा ने हल चलाया खेत के उस हिस्से में मोतियों की

फसल उगी। विशेष व्यक्ति जब विशेष परिश्रम करते हैं तो प्रायः ऐसे चमत्कार हुआ करते हैं। विश्व का इतिहास ऐसे चमत्कारों से भरा पड़ा है। ये चमत्कार किसी दैवी शक्ति के द्वारा नहीं हुए, वे इंसान के पसीने के कारण हुए, पुरुषार्थ के द्वारा हुए।

अध्यवसाय में मेहनत के साथ धीरज की बड़ी आवश्यकता होती है। धरती में बीज बोया जाता है परन्तु वह एकदम नहीं उग आता। समय लेता है तब धरती के बाहर दिखाई देता है। फसल तैयार होने तक और भी समय लगता है। यदि किसान मेहनत करे और तत्काल फल पो की आशा रखे तो उसे निराश होना पड़ेगा। मजदूर इमारत एक दिन में नहीं बन पाते। जिसके अंतर में आत्म विश्वास और हृदय में प्रेम और अपूर्व सहानुभूति का सागर उमड़ता रहता है? वह कहीं का कहीं पहुँच जाता है। जीवन में वहीं उत्थान प्राप्त कर श्रेष्ठता को पा लेता है।

ऐसा आदमी जानता है कि उसके ऊपर सदा निर्मल आकाश है। अगर कभी बादल घिर भी आते हैं तो वे अधिक समय नहीं टिकते। अपने लक्ष्य पर आँख रखकर बढ़े, चलना इंसान का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है।

जिन्दगी बहुमूल्य निधि :

इन्सान की जिन्दगी वह बहुमूल्य निधि है जिसमें प्रत्येक पल इतना कीमती है कि जिसकी कीमत संसार की किसी निधि से नहीं चुकाई जाती है। उस निधि की सार्थकता संयम के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। संयम मानव जीवन की आधार शिला है। संयम के बिना जीवन निःसार है। आचार्यों ने मानव जीवन का सार चित्त नहीं चारित्र कहा है। सच्चे सुख की प्राप्ति हेतु चरित्र परम आवश्यक है। कहा भी है–

अनन्त सुख सम्पन्न, येनात्माय क्षणादपि।
नमस्तस्यै पवित्राय, चारित्राय पुनः-पुनः॥

अर्थात् उस चारित्र को बार-बार नमस्कार हो जिसके धारण करने से आत्मा क्षण में अनन्त सुख की स्वामी बन जाती है। मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। और कहा भी है–

अर्थात् उस चारित्र को बार-बार नमस्कार हो जिसके धारण करने से आत्मा क्षण में अनन्त सुख की स्वामी बन जाती है। मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। और कहा भी है–

नृजन्म फलं सारं, यदेत तज्ज्ञान सेवनम्।
अनिगुहित वीर्यस्य संयमस्य च धारणम्॥ (सा. समु.)

मानव जीवन वह निधि है जिसमें संयम का कवच लगाकर मोक्ष की मंजिल तक पहुँचा जाता है। इंसान की जिन्दगी में उन्नति, प्रगति, सफलता और उत्कर्ष की

प्राप्ति यत्न पूर्वक की जाने वाली क्रिया से सम्भव है किन्तु आज इन्सान का जीवन इतना अस्त-व्यस्त हो गया है कि जीवन में नियमितता और सुनियोजित कार्य प्रणाली का अभाव-सा होता जा रहा है।

असंयमित जीवन आत्मोत्कर्ष में बाधक है। किसी भी कार्य में सफलता का मुख्य हेतु है संयम और मनोयोग।

जो इन्सान अपने कार्य में उत्साह पूर्वक मनः स्थिइत सहित अहर्निश संलग्न रहते हैं उनका सफलता की ओर कदम रहता है। **विचार ही आचार की आधारशिला** है जहाँ विचार उत्तम होते हैं वहाँ आचार भी श्रेष्ठ होता है। विचार और आचार इतनी महान शक्तियाँ हैं जो समूचे वातावरण और सम्पूर्ण जीवन व परिवेश का काया कल्प करने की शक्ति स्वयं में आत्मशात किए रहती है। विचार को संयमित करने से आत्म शक्ति जागृत होती है और आचार से अभिव्यक्त होती है।

अखिल विश्व में जो भी महापुरुष हुए हैं उनके जीवन का यह मूल मंत्र रहा। प्रतिभा शक्ति का जागरण भी इन्हीं विचार और आचार की शक्ति पर आधारित है। श्रेष्ठ इंसान वही है जो स्वयं की प्रज्ञा से अन्तश्चेतना में निहित प्रतिभा को उभार कर उसमें निखार लाता है।

बुद्धि और विवेक से परिष्कृत कल्पनाएँ ही विचार हैं और इन विचारों को साकार करने के लिए अन्तश्चेतना के प्रवाह में जोड़कर एक नवीन रूप में परिणत किया जाना संयम है। संयम का ही नाम सद्आचार। जीवन की सफलता के लिए अपूर्व आचार के सागर में डूबकर निखरने की आवश्यकता है, अपनी प्रतिभा को प्रतिमा रूप गढ़ने के लिए आचार के आधार को वरण करना ही पड़ेगा। आचार के लिए सरिता का प्रवाह चाहिए जो निरन्तर चट्टानों को भी धूल में मिलाकर अपनी राह प्रशस्त कर लेता है। यही आचार मोक्ष को मंजिल से मिला देता है। अपने पौरुष और कर्मठता पूर्वक बढ़ने से लक्ष्य की ओर गतिमान होने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

आशाओं के सब तार बंधे हैं, तेरी आँखों के तारों पर।
तू कहीं अग्नि में कूद पड़े, खिल जाए फूल अंगारों पर।।
पर्वत भी चूर-चूर होगा, यदि आँखें लाल दिखा दे तू।
गिर जाएँ गगन के तारे भी, यदि उंगली एक उठा दे तू।।

जे कर्म बड़े बलवान :

एक राहगीर जा रहा था। राह में राजा का महल था। रानी महल के बाहर खड़ी रो रही थी। राहगीर ने रानी को रोते देखा तो आश्चर्य करने लगा। तभी सामने एक गरीब महिला को भी रोते देखा। राहगीर दोनों को रोते देखकर बात समझ न

सका। उसने रानी से रोने का कारण पूछा। रानी ने कहा–'मेरे कोई सन्तान नहीं है, सामने मिट्टी में दो बच्चे खेल रहे हैं, इनको देखकर सोच रही हूँ कि ऐसा एक बच्चा मेरे होता तो! सन्तान के अभाव में जो सारा वैभव बेकार हो रहा है।' उसका उपयोग करने वाला वारिश तो हो जाता उसके बाद राहगीर उस गरीब महिला के पास गया और उससे रोने का कारण पूछा। उस महिला ने कहा-'आज मेरे पास कोई काम-धंधा नहीं है। ये मेरे दो छोटे-छोटे बच्चे भूख से परेशान हैं, मैं स्वयं तो भूखी रह जाऊं पर बच्चे भूखे कैसे रहेंगे? यह सोचकर मैं दु:खी हूँ और रो रही हूँ।' राहगीर हैरान है-एक महिला सन्तान न होने के कारण दु:खी है, वह कहती है कि सन्तान होती तो उसे सुख से पालती। और दूसरी महिला के सन्तान है पर उनका पालन करने में असमर्थ है, रोटी देने की क्षमता नहीं है इसलिए दु:खी है।

इन्सान के कर्म का फल बड़ा विचित्र होता है।
स्वयं के कर्म का बीज इन्सान स्वयं ही होता है।।
देख लो इस संसार की विचित्र दशा को प्यारे भाई।
कोई खाने को लाचार है तो कोई खिलाने को रोता है।।

एक व्यक्ति गरीब है, भूखा है, भोजन का कोई साधन न होने से दु:खी है तो कोई अन्य व्यक्ति साधन-सम्पन्न, वैभवयुक्त है किन्तु रोगों के कारण खा नहीं सकता। डॉक्टर कहता है–'ये पकवान खा लोगे तो मर जाओगे।' इस कारण सब कुछ होते हुए भी वह कुछ नहीं खा पाता। कवि ने कहा है–

जे कर्म बड़े बलवान टरत नैया टारे
इनसे सब टक्कर मार-मार के हारे।

और भी आचार्यों ने कहा है–

प्राचीनकर्मबलवान् मुनयोः वदन्ति।।

आचार्य समझाते हैं कि तुम्हारे, पाप कर्म ही तुम्हें कष्ट देते हैं।

पुण्य पाप फल मांहि, हरख-विलखौ मत भाई।

पुण्य और पाप ये दो खेल हैं, इनमें हर्षित मत होओ, पाप के पल में पुण्य के फल में दु:खी मत होओ। जैसा कि वर्तमान में देखा जाता है।

कुत्ते एयरकंडीशन्ड मकान में रहते हैं, कार में घूमते हैं, उनको संभालने के लिए एक नौकर रहता है। उन्हें नहलाने के लिए विशेष साबुन मंगवाया जाता है, यह है उसके पुण्य का चमत्कार और दूसरी ओर एक आदमी भीख मांग रहा है और वह कुत्ते का मालिक उसे दुत्कार देता है। **कुत्ते को पुरस्कार और आदमी का**

तिरस्कार! मनुष्य पर्याय सबसे श्रेष्ठ है, मानव जन्म श्रेष्ठ है पर उसका भी तिरस्कार होता है। उसको रोटी नहीं मिल रही, कोई भीख भी नहीं देता। जिससे माँगता है वही कहता है–'क्या भीख माँगने आ गया?' वह भी समझदार था, उसने कहा–

भिक्षुका नैव याचन्ति बोधयन्ति गृहे-गृहे।
दीयताम् दीयताम् यातः अदानात् फलं इदृशं।

मैं भिक्षा माँगने नहीं आया, मैं भगवान का एक संदेश लेकर आया हूँ। पिछले जन्म में मैंने दान-पुण्य, धर्म, गरीबों की सेवा-परोपकार का कुछ भी काम नहीं किया उसके फलस्वरूप ही आज घर-घर जाकर भीख माँग रहा हूं। आपके पास इतनी धन-सम्पत्ति है, आप भी दान देना सीखिये, परोपकार कीजिए जिससे अगले जन्म में आपको भी भीख न माँगनी पड़ जाये।

इन्सान संसार में कर्म का आदेश लेकर आता है।
सारे विश्व के लिए एक उपदेश लेकर आता है।।
द्वार पर आने वाले भिखारी को दुत्कारना नहीं प्यारे भाई।
भिखारी द्वार पर परमात्मा का संदेश लेकर आता है।।

मैं घर-घर में घूमकर भगवान का यही संदेश पहुँचा रहा हूँ-''**हे भव्य सेठ! तुम्हारे पास धन है तो औषधदान, अभयदान, आहारदान, ज्ञानदान करके परोपकार करो। क्या पता कब एक ठोकर लग जाये, प्राण निकल जायें और यह सब सम्पत्ति सब यहीं छोड़कर चले जायें।।**''

परोपकारी को भी न भूलें। एक जीव दूसरे जीव पर उपकार करता है तो उसकी आत्मा पर अनुग्रह करता है। किसी ने हमसे दान स्वीकार किया-यह हम पर उसका उपकार है। हमने किसी पर उपकार किया, हमने किसी की मदद की उस मदद को उसने स्वीकार किया यह हमारी आत्मा पर उपकार हुआ। मैंने दिया यह अभिमान नहीं करना बल्कि मेरी आत्मा पर उपकार हुआ यह समझना चाहिये-

अनुग्रहार्थ स्वस्यातिसर्गो दानम्।

यह है हमारी भारतीय तत्वज्ञान की परम्परा। कब किसका शुभ-अशुभ कर्म का उदय हो पता नहीं इसलिए किसी का भी तिरस्कार नहीं करना चाहिये। मददगार बनें, किसी की मदद करके उसके कल्याण से निमित्त बनें। एक व्यक्ति स्कूल खोलता है, हजारों रोगी औषधि पाकर निरोगी होते हैं। जिसमें अनेक लोगों के उपकार की भावना है वह व्यवहार रूप से धर्म है, व्यावहारिक धर्म है। जिसको

व्यावहारिक जीवन जीना नहीं आता उसको निश्चय की प्राप्ति कैसे होगी?

व्यवहारिक जीवन कैसे जीवें, यह जीने की कला इन्सान का भला करने से आती है यह कला भी हमारे ऋषि-आचार्यों ने सिखाई। संसार की विचित्र गति है।

किसी गाँव में एक युगल (पति-पत्नी) रहते थे। पति जमींदार था। जमीन-जायदाद बहुत होने से झगड़े-मुकदमें भी खूब चलते रहते थे। रोज ही कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाने होते। वह वकीलों को फीस देते-देते तंग आ गया। पत्नी भी अकेली रहने से बीमार रहने लगी। एक दिन पति ने कहा-'मेरे बेटा होगा तो मैं उसे वकील बनाऊँगा जिससे मुकदमों में रोज-रोज वकील को फीस तो न देनी पड़ेगी।' पत्नी ने कहा–'नहीं, यदि मेरे बेटा होगा तो मैं तो उसे डॉक्टर बनाऊँगी जिससे घर में मेरा उपचार हो सके, मैं तो रोज-रोज डॉक्टरों के चक्कर लगाते तंग आ गई हूँ।' पति ने कहा-'मैं उसे वकील बनाऊँगा।' पत्नी ने कहा–'नहीं, डॉक्टर बनाऊँगी।' और इस प्रकार झगड़ा होने लगा। जोरे-जोर से आवाजें सुनकर गली के लोग इकट्ठे हो गये। किसी को भी बात समझ नहीं आ रही थी। तभी पड़ौस की एक वृद्ध स्त्री उस महिला के पास गई और पूछा, 'बेटी! तुम्हारा बेटा कौन-सी कक्षा में पड़ता है?' महिला ने कहा–'अभी तो हमारे बेटा हुआ ही नहीं।'

अभी बेटा पैदा ही नहीं हुआ और उसे वकील और डॉक्टर बनाने के झगड़े में पड़ गये! जो चीज है ही नहीं, उसके प्रपंच में पड़ गये इसमें क्या लाभ है।

बहुत से लोग भगवान से बेटा माँगते हैं, बहुत से लोग कहते हैं–'भगवान् ने बेटा दे दिया, किसी का बेटा मर जाये तो कहते हैं, हमारा बेटा भगवान ने छीन लिया।' यदि भगवान से माँगने पर बेटा मिलता है तो ये पशु-पक्षी, कुत्ते-बिल्ली, बन्दर-चिड़िया-कबूतर कहाँ-कौनसे भगवान से बच्चा माँगने गये थे। आपने जैन धर्म को समझा ही नहीं तभी भगवान से माँगने की बात करते हैं। जो कुछ भी मिलता है वह आपके पूर्व कर्म से अर्जित पुण्य-पाप के फल से ही मिलता है। दीपावली के दिन आप लक्ष्मी का पूजन करते हैं, तिलक लगाते हैं, तिजोरी खोलते हैं, पर यह नहीं समझते कि धन-सम्पत्ति पुरुषार्थ और पुण्य से ही मिलती है, लक्ष्मी की पूजा से नहीं। यदि लक्ष्मी की पूजा से ही धन मिलता तो विदेशों में जहाँ लक्ष्मी की मान्यता नहीं है वे डॉलर, येन, पौण्ड वाले विदेशी किसकी पूजा करने गये थे? धन-सम्पत्ति पुण्य और पुरुषार्थ से मिलते हैं। अँधेरा देखने के लिए किसी दीपक की आवश्यकता है क्या? अंधेरा तो स्वयं दिखाई देता है। हम अज्ञान-अन्धकार में न रहें इसलिए यह बताना आवश्यक है कि धन प्राप्ति के लिए

भगवान से याचना, लक्ष्मी की पूजा करना कार्यकारी नहीं है, पुरुषार्थ ही कार्यकारी है। कहा भी है।

मन में सन्तोष हो तो दुनियां में सोना ही सोना है।
शुभ भावों के द्वारा अपने कर्म कलंक को धोना है।
कर्म करते रहिए फल की इच्छा नहीं करना प्यारे भाई।
पुरुषार्थ के अभाव में जिन्दगी को व्यर्थ ही खोना है।।

किसान झुककर जमीन में कुछ बीज डालता है। दो-चार महीने बाद वे बीज-दाने फसल लेकर पुरस्कार रूप में खड़े हो जाते हैं-तुमने कुछ बीज डाले थे झुककर, उसी के पुरस्कार के रूप में ये फसल तैयार हैं। एक व्यक्ति झुककर नारियल बोता है तो नब्बे वर्ष तक वह पेड़ सिर पर नारियल लेकर खड़ा रहता है-आपने झुककर पानी पिलाया था, मैं आपको जीवन-भर पानी पिलाऊँगा, इसीलिए उसे कल्पवृक्ष कहा गया है।

एक राजनेता को किसी कारण छ: महीने की जेल/सजा हो गई। जेल में उसकी सामने वाली कोठरी में एक खूँखार डाकू रह रहा था। दोनों में परिचय हो गया। राजनेता को जेल में भी सुविधाएं मिलती हैं। वह कोई फल खाता, नाश्ता करता तो कुछ उस डाकू को भी दे देता। इस प्रकार छ: महीने बीत गये। राजनेता की सजा की अवधि समाप्त हो गई, उसके जेल से छूटने की तैयारी होने लगी। वह डाकू दु:खी होने लगा, कहने लगा-'इतने दिनों का साथ अच्छा रहा, आप अपनी याददाश्त के रूप में अपनी कोई चीज दे जाइये।' राजनेता ने पूछा–'क्या चीज लेना चाहते हो?' डाकू ने कहा-'वह दर्पण दे दीजिए जिसमें आप अपना चेहरा देखते थे।' (जेल में आपराधिक कैदी को दर्पण आदि नहीं दिये जाते, इसलिए उस डाकू ने वर्षों से दर्पण में अपना चेहरा व प्रतिबिम्ब नहीं देखा था।) राजनेता ने कहा-ठीक है।' और उसने अपना दर्पण दे दिया। बिना फ्रेम का दर्पण, केवल टुकड़ा था दर्पण का। राजनेता को जाने के बाद डाकू ने एकान्त में दर्पण देखा। यह क्या? इस दर्पण में तो कुछ दिखाई नहीं देता। वह लाल रंग से रंगे हिस्से की ओर देख रहा था। बहुत गुस्सा आया डाकू को। मैंने दर्पण माँगा तो दर्पण पर रंग पोतकर दे दिया। नहीं देना था तो मना कर देता पर रंग पोतकर क्यों दिया, इसका क्या करूँ? यह सोचते हुए उसने एक कंकर लेकर उस रंग को घिस डाला। सारा रंग उतर गया, अब वह बिल्कुल साफ हो गया, रंगविहीन। उसमें आर-पार दिखने लगा, पर चेहरा फिर भी दिखाई नहीं दिया। दो-चार दिन बाद वह राजनेता अपना

कुछ बाकी सामान लेने जेल में आया। राजनेता ने सोचा-चलो अपने उस डाकू पड़ौसी से भी मिल लें। जेलर की आज्ञा से वह उससे मिलने गया, उसका हाल पूछा। डाकू नाराज था। उसने कहा, 'तुमने मुझे रंग पोतकर दर्पण दिया?' राजनेता समझा नहीं-'रंग पोतकर? क्या मतलब? अच्छा, दर्पण दिखाओं, देखकर ही समझ में आ सकता है।' डाकू ने दर्पण दिखाया। दर्पण देखकर राजनेता गहरे सोच में डूब गया–'चमत्कार है। रंग आर-पार दिखाई दे रहा है। ओह!' उसे आध्यात्मिक ज्ञान होने लगा–'आत्मा पर कर्मों की कालिमा का आवरण चढ़ा है इस कारण हमें ज्ञान नहीं होता, कर्मों का आवरण/कालिमा हट जाने से आर-पार दिखाई दे सकता है, ज्ञान का प्रकाश हो जायेगा। भगवान ने तपश्चर्या के द्वारा उन कर्मों के आवरण/कालिमा को हटा दिया उनका चित्त काँच जैसा स्वच्छ-निर्मल हो गया जिससे तीन लोक के सारे पदार्थ, सारे द्रव्य अपने गुण-पर्यायों सहित उसमें झलकने लगे हैं। ओह! आज मुझे सच्चा बोध हो गया।'

तज्जयति परं ज्योति: समं समस्तैरनन्तपर्यायै:।
दर्पणतल इव सकता प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।।

जैसे दर्पण में सामने रखा सब सामान दिखाई देता है वैसे ही भगवान के ज्ञान में तीन लोक, सब द्रव्य अपने गुण-पर्यायों सहित दिखाई देते हैं। आचार्य समन्तभद्र ने भी कहा–**'यद्विद्या दर्पणायते।'** भगवान का ज्ञान दर्पणवत् होता है। प्राय: सभी आचार्यों ने दर्पण को मांगलिक द्रव्य माना। प्रात:काल उठकर सबसे पहले दर्पण में मुख देखकर णमोकार मंत्र का उच्चारण करें तो यह बोध होने लगता है कि जो शरीर दर्पण में दिखाई दे रहा है वह शाश्वत् नहीं है, जो आत्मा देख रही है, जान रही है वह शाश्वत है। दर्पण दिखाता है–जो बाल काले थे वे आज सफेद हो गये। दर्पण का दर्शन यह भेद-ज्ञान करा सकता है। दर्पण में जो कुछ दिखाई दे रहे हैं-हड्डी-चमड़ी, बाल ये सब आशाश्वत हैं, ये कुछ भी मेरे साथ जाने वाले नहीं। इन सबको देखने जानने वाली आत्मा है, न दर्पण शाश्वत है और न शरीर, एक मात्र आत्मा ही अजर-अमर शाश्वत है।

कर्म की गति विचित्र है। जिनके जन्म के पूर्व रत्नों की वर्षा हुई, जिसके जन्म के समय इन्द्र दरवाजे पर चौकीदार बन खड़ा रहा कि 'जन्म होते ही पहले मैं दर्शन करूँ।' जन्म के बाद देवताओं ने मिलकर अभिषेक किया। बड़े हुए तो प्रजा को जीने के साधन, जीवन के उपाय बताये, असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और व्यापार की शिक्षा दी, प्रजा ने जिन्हें विधाता कहा। उनके दीक्षा लेने के बाद

निकाचित कर्मों के कारण रोटी (आहार) नहीं मिली। जिनका पुत्र चक्रवर्ती, नवनिधि का अधिपति, षट्खण्ड का विजेता, जो स्वयं तीर्तंकर होने वाले हैं ऐसे पुण्यशाली, तीर्थंकर प्रकृति से बड़ा पुण्य और क्या होगा? ऐसे तीर्थंकर को भी छः माह तक अन्तराय कर्म ने सताया, आहार नहीं मिला। यदि आपको आधा घण्टे खाना देर से मिले तो पत्नि पर व घरवालों पर क्रोध करते हैं। पर यह कर्म जिसने तीर्तंकर को भी तंग किया तो **हम और आप किस खेत की मूली हैं?**

जिनके तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है वे चाहते हैं कि जल्दी कर्म समाप्त हों और मैं मुक्त हो जाऊँ। पर आयु कर्म, निकाचित कर्म जिनका बंध पहले हो चुका, वे तो भोगने ही पड़ते हैं, उन्हें भोगने के लिए संसार में रहना ही पड़ता है, कर्म हैं तब तक संसार से कैसे मुक्त हों?

हमारा मन रात-दिन मलिन होता रहता है। सबेरे से शाम तक कपड़े पहने रहते हो वे गन्दे हो जाते हैं, शाम को नहा लेते हो, कपड़े धो लेते हो, बदल लेते हो। सफाई करना आवश्यक है, घर में भी अन्दर-बाहर सफाई करते हो, झाड़ू लगाते हो, मकान को चूना-सफेदी करते हो। यदि सफेदी बाहर ही करते रहो तो अन्दर रोशनी कैसे होगी? अन्दर रोशनी फैलाने के लिए चूना-सफेदी अन्दर भी लगानी होगी। अन्तःकरण में धर्म-ध्यान करना होगा तभी भेद-विज्ञान होगा, प्रकाश होगा। बाहर से मकान सुन्दर है उसमें अन्दर रोशनी फैलाने के लिए अन्दर भी सफेदी करनी होती है, इसी प्रकार बाहर की सफाई-सुन्दरता के साथ अन्दर की सफाई की भी आवश्यकता है। बाहर तो शरीर का शृंगार कर, पाउडर लगाकर सजाते हैं अन्दर धर्म-ध्यान रूपी शृंगार की आवश्यकता है। हड्डी-चमड़े के इस शरीर का शृंगार आत्मा के लिए लाभदायक नहीं। पर परिणति में ही चौबीस घण्टे डूबे रहते हैं जिससे आत्मा मलिन हो रही है। कहा भी है–

व्यर्थ के कार्यों में इन्सान की शक्ति क्षीण हो रही है।
अज्ञान के कारण सोचने की क्षमता हीन हो रही है।।
आत्मा तो चित्-चमत्कार निरंजन स्वरूप है।
कर्मों के आवरण से आत्मा मलीन हो रही है।।

इसलिए आचार्य अमृतचन्द्र ने कहा–'मैं अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए यह शास्त्र-रचना कर रहा हूँ। द्रव्य-दृष्टि से मेरी आत्मा सुद्ध है पर पर्याय दृष्टि में मलिन है।' जो अपना कल्याण करता है वह दूसरे के लिए भी कल्याणकारक, उपकारक होता है। जैन धर्म के अनुसार-जो अपना कल्याण नहीं कर सकता वह

दूसरे के कल्याण का निमित्त भी नहीं बन सकता। जो स्वयं बलवान नहीं होगा वह दूसरों को सहारा कैसे दे सकेगा? निर्बल क्या सहारा देगा दूसरों को?

तपस्वी, मुक्तिगामी, तीर्थंकर सभी ने पर्वत पर तप करके अपना जीवन ऊँचा उठाया, मोक्ष गये। हम भी अपने जीवन को ऊँचा उठायें–

भजन में कहा भी है–

हे भव्य जीव धरती पर तुम करो नहीं मनमानी
जो सिद्ध हुए हैं उनकी जरा याद करो कुर्वानी।

और भी आचार्यों ने कहा है–

उन्नतं मानसं यस्य भाग्यं तस्य समुन्नतं।

जिसका मन पर्वत जैसा ऊँचा उठ गया उसका भाग्य भी ऊँचा उठेगा। जिसका मन गड्ढे जैसा हो गया उसका भाग्य भी गड्ढे में चला गया। हमें अपने परिणामों की विशुद्धि के लिए अपनी शक्ति के अनुसार धर्म-ध्यान, सम्यग्दशन-ज्ञान-चारित्र अवश्य करना चाहिए। जितना बनता है उतना अवश्य कीजिए, जो नहीं बनता उसके प्रति श्रद्धा कीजिए, उसे छोड़िये मत। जीवन का क्या भरोसा है? हमें तो जब बीमारी आती है जब हमें दूनियाँ के दुःख सामने आते हैं तब हमें धर्म-ध्यान याद आता है। तब मंत्र याद आते हैं। जैसा कि भजन में कहा भी गया है–

जब कोई नहीं आता मेरे प्रभुवर आते हैं।
मेरे दुख के दिनों में वे बड़े काम आते हैं।।

श्रीमद् रायचन्द्र जी ने एक रूपक दिया है–एक सेठ था। खूब धन कमाया। परिवार के लिए खूब वैभव, खूब धन-दौलत जोड़ा। किन्तु पूर्व-कर्म के उदय से उसे कुष्ठ रोग हो गया। घर में कोई नहीं छूता, केवल पत्नी ही सेवा करती। एक दिन बेटों ने कहा–'माँ, आप पिताजी की सेवा करती हैं, उन्हें छूती हैं, आप हमारे बच्चों को न छुआ करें।' पिता ने भी सुन लिया। उन्हें बहुत ग्लानि हुई। वे घर छोड़कर चल दिये। चलते-चलते जंगल में पहुँचे। सोचा-अब इस शरीर को छोड़ देना चाहिये। आत्म-हत्या का विचार करने लगे तभी वहाँ एक मुनिराज दिखाई दिये, वे तपस्या कर रहे थे। सेठ जी मुनिराज के पास बैठ गये। पूछा-'मुनिराज! मैंने ऐसा कोई काम नहीं किया जिसके फल से मुझे यह बीमारी मिली। फिर यह क्या हुआ?' मुनिराज ने बताया–'ये तुम्हारे पूर्व कर्मों का फल है। तुमने पूर्व जन्म में कुष्ठ-रोगियों का तिरस्कार किया था।' 'अब क्या करूँ महाराज?' मुनिराज ने कहा–'साधु बन जाओ, तपस्या करो।' उन्होंने सेठ को मुनि-दीक्षा दे दी। जंगल की

शुद्ध हवा, परिणामों की निर्मलता, सत्संग, शुद्ध आहार-पान, इन सबके प्रभाव से दो-चार वर्ष में बीमारी जाती रही। शरीर वापस स्वस्थ, सुन्दर हो गया। मुनिराज ने उन्हें अध्ययन कराया। धीरे-धीरे ज्ञानवान हो गये। अब प्रवचन भी करने लगे। दूर-दूर तक उनके प्रवचनों की चर्चा होने लगी। राजा-प्रजा सभी उनका प्रवचन सुनने आने लगे।

राजा श्रेणिक ने नियम लिया था-एक वर्ष में एक सौ एक मुनियों के दर्शन करूँगा। उन्होंने सौ मुनियों के दर्शन तो कर लिये थे, अब एक मुनि के दर्शन करने शेष थे। वे भी उस मार्ग से जा रहे थे। राह में एक लकड़हारा मिला उससे पूछा-'इधर कोई मुनिराज है क्या?' लकड़हारे ने कहा–'हाँ, इधर एक अनाथ मुनि हैं।' राजा श्रेणिक चौंका–'अनाथ मुनि!' वह उनके दर्शन करने गया। वहाँ उसने पूछ लिया–'महाराज! आपको लोग अनाथ मुनि क्यों कहते हैं' उन्होंने बताया–'मुझे परिवारवालों ने छोड़ दिया, इसलिए मुझे अनाथ कहते हैं।'

कर्म और संसार की बड़ी विचित्र दशा है। उस दशा को समझ कर अपनी दिशा और दशा को सम्हालने की आवश्यकता है संसार में रहकर भी उससे विरक्त रहने की आवश्यकता है। इसीलिए संत हमेशा भावना गाते हैं–

बहुत अच्छा हुआ दुनियाँ से बेवफाई हो गई।
सारे रिस्तों और नातों की सफाई हो गई।।
खून के रिस्ते बने हैं खून चूसने के लिए।
रक्त के व्यापार में दुनियाँ कषाई हो गई।।

अति से क्षतिः

जीवन का आनन्द संयम के संगीत से प्रकट होता है किन्तु जीवन के रहस्यों को न जानने वाला इन्सान जिस किसी दिशा में बढ़कर अति पर उतर जाता है तो मार्ग से विचलित हो जाता है। भटका हुआ मानव मन अतियों में डोलता रहता है। एक अति से दूसरी अति पर आसानी से ले जाता है। मन का स्वभाव ही कुछ ऐसा है। शरीर के प्रति जिसका लगाव है वही व्यक्ति शरीर के प्रति क्रूर और कठोर भी हो सकता है। इस क्रूरता और कठोरता में हमारी शक्ति छिपी है जैसा पहले शरीर से मोहित था वैसा अब भी विपरीत दशा में चिन्तन शरीर पर केन्द्रित होता है। विपरीत अति पर मन धोखा दे जाता है। सदा ही अतियों में चलते रहने की मानसिक वृत्ति का कारण पतन की ओर जाना है। तन, मन और जीवन की क्षति है। शास्त्रों में इस प्रकार की अनेक कथाओं का उल्लेख है। एक छोटी-सी घटना

आपको सुनाता हूँ–

एक राजकुमार था, अगड़दत्त। एक ही पुत्र था वह राजा का। अत्यन्त लाड़-प्यार के कारण वह कुसंगति में फंस गया, व्यसनों में डूब गया। चोरी, जुआ सभी व्यसन थे उसमें कोई व्यसन नहीं छोड़ा उसने। नगर के बड़े प्रतिष्ठित लोग मिलकर राजा के पास गये और कहा–'महाराज! यह राजकुमार हमारा भावी राजा है, यह व्यसनों में इतना डूब चुका, हमारा क्या होगा?' राजा इन सब बातों से अनजान था। उसने कहा–'ये आप लोग क्या कह रहे हैं? क्या यह सच है? पहले जाँच कराऊँगा तभी विश्वास करूँगा।' राजा ने अपे गुप्तचरों से पता करवाया। बात सत्य थी। सभी ने बताया कि–'महाराज! राजकुमार तो अत्यन्त दुर्व्यसनी हो चुके हैं।' राजा ने तुरन्त राजकुमार को राजदरबार में बुलवाया, समझाया–'तुम राज के भावी राजा हो, यह कर क्या रहे हो तुम? ये दुर्व्यसन छोड़ दो।' राजकुमार को व्यसनों की गहरी लत लग चुकी थी, वह व्यसन छोड़ने के लिए तैयार ही न हुआ। राजा ने उसे देश निकाला दे दिया। अगड़दत्त राज्य से निकाल दिया गया। चल पड़ा वह अनजान राह पर।

जंगल-नदी पार करते-करते बनारस पहुँचा। बनारस में घूमता रहा। वहाँ उसे एक गुरुकुल दिखाई दिया, उस गुरुकुल में केवल राजकुमारों को ही शिक्षा दी जाती थी। अगड़दत्त वहाँ जाकर खड़ा हो गया। उस समय एक अध्यापक वहाँ पढ़ा रहे थे। उन्होंने अगड़दत्त को देखा। अध्यापक ज्ञानी थे, अनुभवी थे। अगड़दत्त के मुख को देखकर वे समझ गये-यह बालक किसी उच्च घराने का है। उन्होंने उसे अपने पास बुलवाया, उसका नाम, पता, नगर का नाम आदि पूछा। अगड़तत्त ने थोड़ी उदण्डता के बाद अपना नाम, पता, नगर का नाम आदि बता दिया। अध्यापक उसके शारीरिक लक्षण आदि देखकर समझ रहे थे कि यह बालक बहुत बड़ा शासक हो सकता है पर कुसंगति के कारम गलत रास्ते पर चल पड़ा है। इसका पालन-पोषण अब सही तरीके से होना चाहिये, क्या उपाय किया जाय? तब उन्होंने एक तरकीब सोची और अगड़दत्त को अपने साथ अपने घर ले गये। घर जाकर अपनी पत्नी से कहा–'मेरी एक बहिन थी, यह उसका बेटा है। अब इसके परिवार में कोई नहीं रहा, इसलिए अब यह यहीं रहेगा, अब हमको इसका पालन करना है। पत्नी सहमत हो गई इसके लिए। वह उसकी अच्छी तरह देख-भाल करने लगी। अध्यापक ने भी उसे बहत्तर कलाएं सिखाईं।

कहा भी है–

कला वहत्तर पुरुष की जा में दो सरदार।
एक जीव की जीविका एक जीव उद्धार।।

एक दिन नगर मे एक हाथी ने उत्पात मचा दिया। सैनिक उस हाथी को पकड़ नहीं पा रहे थे। तभी बहत्तर कला में कुशल अगड़दत्त ने उसे वश में कर लिया। समस्त नगर में उसका नाम फैल गया। राजा तक भी उसकी प्रसिद्धि पहुँची। राजा ने उसे बुलवाया उसका परिचय प्राप्त किया।

कुछ दिन बाद वहाँ राजमहल में चोरी हो गई। पहले भी चोरियाँ हो गई थीं पर चोरों का कोई पता नहीं चल रहा था। सब परेशान थे। तभी राजा को अगड़दत्त का ध्यान आया। राजा ने फिर अगड़दत्त को बुलवाया और कहा–'तुम बहुत कुशल व्यक्ति हो, राजमहल की चोरी के बारे में कुछ पता करो।' अगड़दत्त ने सब जाँच-पड़ताल कर जाना कि चोर अवश्य इसी रास्ते से आयेंगे। वह अमावस्या की रात को उसी रास्ते/पगडंडी के पास जाकर सो गया। चोर आये, अगड़दत्त को देखा तो पूछा–'पुम कौन हो?' अगड़दत्त ने कहाँ–'मैं चोर हुँ, थोड़ी देर के बाद चोरी करने जाऊँगा' चोरों ने पूछा–'आज कहाँ चोरी करोगे?' अगड़दत्त ने एक सेठ का नाम व पता बता दिया। वे सब चोर भी अगड़दत्त के साथ चोरी करने चल दिये। अगड़दत्त ने पहले से ही वहाँ सिपाहियों की व्यवस्था कर रखी थी। वहाँ पहुँचने के बाद उचित समय देखकर उसने सिपाहियों को संकेत किया। सब सिपाही बाहर निकल आये और चोरों को पकड़ लिया। उन चारों से अब तक की हुई चोरियों का भी सारा धन बरामद कर लिया। राजा ने सोचा–'धन तो वापस मिल ही गया, इन्हें क्यों सजा दी जाये?' राजा ने उन्हें देश-निकाला दे दिया। पहले देश-निकाला की सजा बहुत बड़ी मानी जाती थी, इसलिए इसकी परिपाटी भी बहुत थी। राजा अगड़दत्त से बहुत खुश हुआ। राजा ने उसे मुँह-माँगा ईनाम देना चाहा। अगड़दत्त ने कहा–'मुझे एक घोड़ा व रथ दे दीजिए, मैं अपने नगर जाना चाहता हूँ।' राजा ने घोड़ा व रथ दे दिया। अगड़दत्त ने जिस अध्यापक के घर रहकर अध्ययन किया था वहाँ मदनमंजरी नाम की एक लड़की रहती थी। अगड़दत्त की उससे मित्रता हो गई थी। वह मदनमंजरी को लेकर अपने नगर की ओर चल पड़ा। रास्ते में उसे डाकू मिले। वे अगड़दत्त को मारना चाहते थे पर अगड़दत्त ने तलवार से युद्ध कर उन सब को भगा दिया। जब वह अपने नगर पहुँचा तो पिता ने उसके लिए दरवाजा नहीं खोला। इस घटना से अगड़दत्त को बहुत विचार हुआ-अरे! मैं इतना पढ़-लिखकर, नाम कमाकर आया हूँ तब भी माँ-बाप ने तिरस्कार ही किया। वह वहाँ से चल दिया और

एक पहाड़ पर पहुँचा। वहाँ एक मुनिराज तपस्या कर रहे थे। अगड़दत्त ने मदनमंजरी के साथ दीक्षा धारण कर ली। वहाँ पर उन्हें वे डाकू जिन्हें अगड़दत्त ने बनारस में पकड़वाया था, मिले। वे डाकू भी दीक्षा धारण कर चुके थे। सभी ने तपस्या करके सद्गति प्राप्त की।

इन्सान की जिन्दगी एक सुन्दर सी पतवार है।
यह संसार सागर ही उसकी मंझधार है।।
कब किस दिशा में मुड़ जाए इसका कोई भरोसा नहीं।
मंझधार से पार होने के लिए धर्म एक आधार है।।

मनुष्य का जीवन कब-किधर मुड़ जाये-इसका पता नहीं चलता है। डाकू भी साधु बनकर सद्गति को प्राप्त हो जाते हैं। और साधु भी डाकू और मांसाहारी बनकर जीवन और धर्म का विनाश कर देता है। मदर गेरु पुराण में एक घटना आती है। जैनधर्म में कथाओं के माध्यम से बहुत शिक्षा दी गई है।

एक बार प्रीतिंकर नाम के मुनिराज आहार चर्या के लिए गए। आहार चर्या को जाते समय उन्होंने नियम लिया कि जो व्रती श्रावक होगा उसी से मैं आहार लूँगा और श्रावकों के घर जाते हैं। इस प्रकार प्रीतिंकर मुनिराज ने गली-गली में चर्या के लिये जाते समय देखा कि वहाँ एक घर बुद्धिसेना नाम की एक वेश्या का था। उसके घर के सामने से जाते समय उसने उन मुनि को देखकर उनके सामने हाथ फैलाकर उनको रोक लिया और वह वेश्या प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभु! मुनि आदि सत्पात्रों को दान देने के लिये हमको कौन-सा आचारण व्रत धारण करना चाहिये। तब मुनिराज मौन छोड़कर बुद्धिसेना वेश्या को उपदेश देने लगे कि देवी! सबसे पहले मुनिराज को आहार देने के लिए उत्तम कुल में जन्म लेना पड़ता है। पाप कर्मों का मैंने अज्ञान से उपार्जन किया है। यदि तुम्हारा वेश्यावृत्ति रूपी पाप छोड़ने का विचार हो जाये तो अष्टमूल गुणों को धारण करना हो तो सच्चे देव, शास्त्र गुरु के पास जाकर आत्मशुद्धि का प्रायश्चित लेना चाहिए।

इस प्रकार प्रीतिंकर मुनिराज ने बुद्धिसेना वेश्या को उपदेश दिया। जिससे उसने मद्य, मांस, मधु का त्याग करके पंचाणुव्रत धारण किये।

उद्यान में विराजमान विचित्रमति मुनिराज ने प्रीतिंकर मुनिराज से पूछा–हे मुनिराज! आज आपको आहार से आने में देर किस कारण हो गई। वे प्रीतिंकर मुनिराज कहने लगे–हे विचित्रमति! सुनो, आहार के लिये जाते समय गली में एक बुद्धिसेना वेश्या का घर था। उसके घर के सामने से जिस समय मैं निकला तो उस

वेश्या ने मुझे रोक लिया। वह वेश्या अनेक आभूषणों को पहने हुए तथा सब प्रकार के शृंगार से सजी हुई थी। उसने मुझसे कई प्रश्न पूछे और मैंने उनका धर्मोपदेश के रुप में आगमानुसार उत्तर दिया। उपदेश को सुनकर उसने पापों का त्याग करके अणुव्रत धारण किये। ऐसा प्रीतिंकर मुनि कह रहे थे किन्तु विचित्रमति के विचारों में विकार की उत्पत्ति हो गई और उसके विषय में पूछने लगे कि उसकी सुन्दरता कैसी थी और विचित्र मति मुनि प्रीतिंकर मुनि से कहा कि मैं भी वेश्या के घर आहार करने जाऊँगा। मुनि आहार को जाते हैं किंतु वेश्या ने देखकर मुनि को नमस्कार किया और प्रार्थना की–कल जो मुनिराज पधारे थे उनसे मैंने पंचाणु व्रत लिये हैं उन व्रतों से मुझे कौन से फल की प्राप्ति होगी।

वेश्या मुनिराज को समझाने लगी कि मनुष्य गति में आपने संयम धारण किया है। ऐसे संयम को त्याग कर अधोगति को ले जाने वाले विचारों का आपने चिंतन किया है यह दु:खादायक है। इसका त्याग करो। वेश्या के बार-बार समझाने पर भी वह मुनि महाव्रत से चलायमान हो गये। फिर वेश्या से कहने लगे कि हम दोनों परस्पर स्पर्श करें। इस प्रकार अश्लील बातें वेश्या से कहने लगे। वेश्या के मना करने पर विचित्रमति मुनि वेश्या से विषयभोग करने का उपाय सोचने लगे और इधर-उधर भटकने लगे।

वहाँ एक गंधमित्र नाम का मांसभक्षी राजा था। उस मुनि ने सोचा कि राजा के द्वारा ही मेरी इच्छा पूरी होगी। इस प्रकार वह मुनि रसोइये के साथ स्वादिष्ट मांस को लाकर राजा को देने लगा। जिससे राजा मुनि से प्रम करने लगा और उस पर प्रसन्न होकर कहने लगा कि मांस लाने के बदले में कुछ इनाम मांगो, तुम्हारी इच्छा पूर्ति मैं करूंगा। यह सुनकर वह मुनि कहने लगा कि तुम्हारे नगर में जो बुद्धिसेना नाम की वेश्या है उससे विषयभोग करने की इच्छा है। आप उसकी पूर्ण कीजिये। ऐसा सुनते ही राजा ने बुद्धिसेना को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम विचित्रमति के साथ संभोग करो। राजा की आज्ञा मानकर वह वेश्या उस मुनि को अपने घर ले गई। इससे वह मुनि पद से च्युत होकर मरकर हाथी बना।

इश्क का व्यापार नहीं है मानव जीवन।
वासना का ज्वार नहीं है मानव जीवन।।
मानव जीवन मिला है पुण्य कमाने के लिए,
पाप का द्वार नहीं है मानव जीवन।
राम की रामायण है कृष्ण की गीता है,

रामायण का अवतार नहीं है मानव जीवन।
खिजा (उम्र) के साये में भी जीना पड़ता है।।
बसन्त की बहार नहीं है मानव जीवन।
गम से घबरा कर पागल कहा जाता है।।
अमृत की धार नहीं है मानव जीवन।
सदियों के बाद मिलता है बार-बार नहीं।
तपस्या है उपहार नहीं है मानव जीवन।।

एक व्यक्ति अभी कुछ दिनों पूर्व जापान जाकर आया था, वह बता रहा था कि 'एक समय जापान में भी पूर्ण शाकाहार था'-ऐसा किसी बुजुर्ग जापानी ने उन्हें बताया था। युद्ध-अकाल की विभीषिका में मांसाहार का प्रचलन हो जाता है। भारत पहले पूर्णत: शाकाहारी था। मनु महाराज ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया है। जब भारत में विदेशी लोग आये तो मांसाहार प्रारम्भ हो गया और अब आजादी के बाद तो देश में हर घर की बगल में एक कसाईखाना हो गया है। अब तो राजा-प्रजा सब एकमन हो गये, किसे दोष दिया जाये।

महानुभावो! जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन, जैसा पीवे पानी वैसी बोले वाणी। इसलिए पवित्र नैवेद्य चढ़ाते हुए मन में भाव रखो कि भोजन के प्रति आसक्ति न हो। सांसारिक दशा में भोजन खाने के लिए मना नहीं किया है पर इतना ही खाया जाये जितना पचाया जा सके। खाना हमें न खा जाये। खाने के बाद रोग न हो जाये। संसार का तो अन्त नहीं है, जितना बढ़ाते रहोगे-बढ़ता जायेगा। आशा-आकांक्षा की तो कोई सीमा नहीं है। आज मानव अन्न का कीड़ा बन गया है आज तो मानव भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक खोकर सर्वभक्षी हो गया है। शुद्ध-अशुद्ध का विचार भी नहीं है। होटलों में, रेल्वे स्टेशनों पर उन्हीं बर्तनों में सब खाते रहते हैं, टी.बी. की बीमारी वाला भी उन्हीं बर्तनों में खाता है, बर्तनों की सफाई होती नहीं, इससे ही बीमारियाँ बढ़ रही हैं।

आजकल कुत्ते-बिल्ली आदि पशुओं को पालने का प्रचलन होता जा रहा है। उनके स्पर्श से अनेक बीमारियाँ बढ़ती हैं। वे तो पशु हैं, चाटते हैं, नाखून लगा देते हैं जिनसे नाना बीमारियाँ हो जाती हैं।

महानुभावो! हमें शुद्धता का, खान-पान की पवित्रता का विचार रखना चाहिये। आपका शरीर पवित्र होगा तो मन भी पवित्र होगा, वाणी भी पवित्र होगी और तभी आत्मा भी पवित्र होगी। कहा भी है–

मन पवित्र होगा माथा पवित्र होगा।
करो भलाई पर की भला स्वयं का होगा।।

मुक्तक:

इन्सान की योग्यता के अनुसार ही काम होते हैं
काम कोई करता है किसी और के नाम होते हैं
खान-पान का इन्सान के जीवन में बड़ा प्रभाव होता है
जैसा भोजन करते हैं वैसे इन्सान के परिणाम होते हैं।।

महाभारत में एक घटना आती है–दुर्योधन के आदेश से दु:शासन जब द्रोपदी का चीर हरण कर रहा था सभा में पितामह भीष्म, गुरु द्रोण, पाँचों महाबली पाण्डव सामने बैठे उस दृश्य को देख रहे थे। अबला नारी द्रोपदी एक-एक करके सभी से अपनी इज्जत की भीख मांग रही थी, अपनी लाज की रक्षा के लिए गिड़–गिड़ाती रही लेकिन कोई भी काम नहीं आया। ''**दुख में सुमरन सब करे सुख में करे न कोय**'' अथवा ''सुख के सब साथी दुख में न कोय'' कहावत के आधार पर द्रोपदी ने अपनी आँख बन्द कर परमात्मा का ध्यान किया। लोग कहा करते हैं दुनियां में जब अपने कहे जाने वाले सभी लोगों के द्वार बन्द हो जाते हैं तब भी एक दरवाजा खुला रहता है संत और भगवन्त का। आखिर परमात्मा ने उस अबला नारी की पुकार सुनी और रक्षा की।

समय अपनी गति से व्यतीत होता गया और वह समय आ गया जब पितामह भीष्म मृत्यु शैया पर (बाणों की शैय्या पर) पड़े थे। उन्होंने सभी पाण्डवों को अन्तिम धर्मोपदेश दिया और पूछा। अरे! द्रोपदी नहीं दिखाई दे रही है उसे भी बुलाया जाए। पितामह की आज्ञा सुनकर तुरन्त ही द्रोपदी ने पितामह के पास जाकर कहा। पितामह आपने मुझे याद किया। तब पितामह ने कहा-'हाँ, बेटी मेरा अन्त समय चल रहा था तो मैंने सोचा कि कुछ धर्म उपदेश दे दूँ।' सुनकर द्रोपदी की त्यौरियां चड़ गई और जोश के साथ कहा– 'पितामह आप मुझे धर्म सिखाने की बात कर रहे हैं। इससे पहले मैं पूछ रही हूँ उस समय आपका धर्म कहाँ गया था जब भरी सभा में आपके जैसे महापुरुष बैठे थे। उस समय अपने बोटों-नाती-पोतों को धर्म नहीं सिखाया।' सुनकर पितामह की आंखों से पश्चाताप के आँसू बहने लगे और रुँधे कंठ से कहा–'हाँ, बेटी तू ठीक कह रही है उस समय मैंने दुष्ट दुर्योधन का अन्न खाया था इसलिए मेरे परिणाम भी खोटे रहे, मैं अन्याय का प्रतिकार नहीं कर सका किन्तु आज अर्जुन के बाण से मेरे तन से सारा रक्त बह गया है। अत:

अब मैं उपदेश देने का अधिकारी हूँ और मेरा अन्तिम उपदेश है कि तुम हमेशा अहिंसा आदि व्रतों का पालन करना। इससे आत्मा पवित्र हो सकेगी।'

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्।।

जगत् में जो कर्तृत्व भाव है उसे हटाना है। मेरे कारण मेरा बैटा सुखी है, मेरे कारण से मेरे पिता सुखी हैं–ये सब मिथ्याभाव हैं, इन्हें हटाना है। बैलगाड़ी के नीचे चलता हुआ कुत्ता सोचता है-यह गाड़ी मेरे कारण से चल रही है, मैं इसे ले जा रहा हूँ। यह भ्रम-बुद्धि है। हर आत्मा स्वतंत्र है, अपना कर्त्ता है, अपने पुण्य-पाप का कर्त्ता है, उन कर्मों को स्वयं भोगता है। बेटे के पेट में दर्द है, औषधि पिताजी खालें तो क्या बेटे के पटे का दर्द ठीक हो जायेगा? पति को भूख लग रही है, पत्नी खाना खावे तो क्या पति की भूख तृप्त हो जायेगी? हर व्यक्ति को अपने कर्म स्वयं ही भोगने पड़ते हैं।

मन में कर्तृत्व भाव हैं तो सारी क्रियाएँ करते रहने पर भी दु:खों से मुक्ति नहीं मिलेगी, पापों से मुक्ति नहीं मिलेगी। कर्तावाद ही सबसे अधिक खतरनाक है।

एक किसान वर्षा ऋतु में खेत में कपास का बीज बोता है। पौधे में कपास आने पर उसे निकालता है, इकट्ठा करता है, रुई को बेचता है। मिल मालिक उस रुई से धागा बनाता है फिर वह धागा कपड़ा मिल को बेच देता है। कपड़ा मिल में उसका कपड़ा बनता है और बाहर जाकर अलग-अलग व्यापारी उस पर अपना ठप्पा लगाकर बेचते हैं, तब कहा जाता है-यह कपड़ा अमुक कम्पनी का है। जिस किसान ने कपास का बीज बोया उसका कहीं नाम नहीं होता। विचित्र लीला है कर्तृत्ववाद की। माँ नौ महीने सन्तान को अपने पेट में रखती है, जन्मने के बाद, स्कूल में सब जगह पिता का नाम लिखाया जाता है। पूछते हैं–यह किसका बेटा/बेटी है? तो पिता का नाम बताया जाता है। अभी केरल में एख स्थान पर मातृत्वाप्रधान संस्कृति है, वहाँ माँ का नाम बताया जाता है। हम इस कर्तृत्ववाद में ही डूब गये। इसलिए अभिमान उत्पन्न होता है-मैंने यह किया, ऐसा किया, मेरे कारण ऐसा हुआ-यह दुरभिमान जागृत हो जाता है। यह दुरभिमान, यह अज्ञान दु:ख का कारण है। इसे हटाने के लिए ही दीपक जलाते हैं।

सुख का कारण ज्ञान है। अज्ञान दु:ख का कारण है। रास्ते में पाँप पड़ा है अज्ञान के कारण यह ज्ञान नहीं है कि साँप काट खायेगा, वह बचता नहीं है और

उसे सांप काट खाता है। किन्तु जब यह ज्ञान होता है कि यह साँप है, यह काट खाता है, तो व्यक्ति उससे बचकर निकल जाता है। ज्ञान ही सुख का कारण है। इस ज्ञान-प्राप्ति के लिए दीपक जलाते हैं। पर यह दीपक भौतिक है, यह बाहरी अंधेरा दूर करता है। अन्तरंग का अंधेरा तभी दूर होगा जब हम स्वयं प्रतिदिन अध्ययन करें, स्वाध्याय करें, धर्म-ग्रन्थ पढ़ें। सत्संगति से अच्छी बातें सीखें। अपने परिणामों को निर्मल बनायें, ज्ञानमय बनायें, ध्यानमय बनायें तभी उस भौतिक दीपक को जलाने का फायदा है। अज्ञान-अंधेरे को दूर करे तभी यह दीपक जलाना सार्थक है।

इंसान की जिन्दगी क्या? खानापूर्ति

इंसान की जिंदगी एक प्रश्न से उत्पन्न होती है। वह इंसान इंसान नहीं जिसके जीवन में प्रश्न उत्पन्न न हों। प्रश्न इंसान के अंदर उठते हैं मुर्दा में नहीं, अचेतन में नहीं। चेतना यह भी एक प्रश्न है। चेतना क्या है? चेतना जागृति का नाम है सतर्कता का नाम है, जिसके जीवन में सतर्कता है उसके जीवन में सफलता है। जिसके जीवन में प्रमाद है उसका जीवन असफल माना गया है। जैसा कि सूक्ति में कहा है-

आलस मनषस्य शीर स्थो महारिपुः।

आज का इंसान जिंदगी पाकर भी वास्तविक जीवन नहीं जी पा रहा है। इंसान की जिंदगी मात्र खानापूर्ति बनकर रह गई है यहाँ तक देखें कि इंसान का जन्म भी आज खानापूर्ति के लिए हो रहा है। विषयों का भोगी यह मानव भोग में लीन होकर उपयोग खो बैठा है, ज्ञान खो बैठा है। भोग का परिणाम संतति है और संतति से घबराकर घिनौने कृत्य करने पर उतारू हो गया है यानि जहाँ भोग है वहाँ संतानोत्पत्ति की प्रचुरता भी होगी। भोग तो करता है किन्तु संतान के नाम से डरता है उनकी देख-रेख, सेवा कौन करेगा? अत: अपनी कमजोरी छुपाने के लिए सूत्र का सृजन कर बैठा। ''**दो या तीन बच्चे होते हैं घर में अच्छे**'' वर्तमान में उसमें भी परिवर्तन कर दिया ''**वस बच्चे दो ही अच्छे**''। अरे! आपके भोग से जो गर्भ में अंकुरण हो रहा है उन अंकुरों का क्या होगा? वह तो वृक्ष बनेंगे ही लेकिन आज के इंसान पर भूत सवार हुआ और अंकुर को वृक्ष न मानकर उसे गर्भ में ही कुचलना, मसलना सीख लिया है। जितनी आवस्यकता है उतने जन्म पाते शेष को बेरहम होकर गर्भ के गर्त में दबा दिया जाता है।

रे इंसान! यह प्रवृत्ति तो राक्षस के भी नहीं थी जो आज तूने अपना रखी है हम कह रहे थे कि जन्म आज खानापूर्ति बन कर रह गया है तो आप समझ गये होंगे और जब जन्म खानापूर्ति है तो पालन क्या वास्तविक हो सकता है अर्थात् हनीं। बच्चों का पालन भी खानापूर्ति होकर रह गया है। माँ बच्चे को दूध पिलाने से कतराती है अरे! बालक को माँ अपने स्तन से दूध के बहाने हृदय का प्यार, प्रेम, स्नेह देती थी। अपने आँचल में छुपाती थी। वह प्रेरम के संस्कार बालक के अंदर दृढ़ होते थे इससे वह माँ का स्नेह पाकर उसके चरणों का सेवक बना रहता था किन्तु माँ छोटे से बालक को आँचल से दूर हटाकर उसके हाथ में बॉटल पकड़ा देती है। वह बालक बॉटल का दूध पीकर उससे स्नेह करने लगता है, बॉटल को ही माँ समझ बैठता है और बड़ा होकर बीयर अथवा शराब की बोतल लेकर खड़ा हो जाता है।

आज का इंसान इन्सानियत में जीता नहीं है।
इंसान का समय धर्म कार्य में बीता नहीं है।।
शराब आदि अमृत नहीं जहर है मेरे भाई।
धर्म का अमृत पान न मिले तो जहर कोई पीता नहीं।।

कभी अन्य बोतल कोकाकोला इत्यादि से प्रेम रखता है, माँ से नहीं। यानि वह भोगी बन जाता है। भोगी बनकर माँ के चरणों का सेवक तो नहीं, पत्नी का दास अवश्य बन जाता है।

हमारा कथन चल रहा था कि सिंान की जिंदगी मात्र खानापूर्ति बनकर रह गयी है। इंसान पढ़था-लिखता है तो मात्र खानापूर्ति के लिए। पहले से कहने लगते हैं लोग सर्विस मिलनी ही नहीं, क्या रखा है पड़ने में? क्या मात्र सर्विस ही पढ़ने का व शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य है? अरे! पढ़ना, शिक्षा प्राप्त करना तो जीवन में उत्कर्ष की ओर बढ़ने के लिए होता है ना कि नौकरी करके अधिकारी वर्ग या राजनेताओं की लल्लू-चप्पो कर उनके दब्बू बने रहने के लिए।

शिक्षा ज्ञान वह कला है जो आकाश में भी चलना सिखाती है। जमीं में डूबे हुए रत्नों को खोज निकालती है और जीवन की हर पहेलियों को सुलझाने का श्रेष्ठ हल है लेकिन लोग मात्र डिग्री प्राप्त कर शिक्षा को खानापूर्ति मान लेते, इति श्री मान लेते हैं।

इन्सान के लिए इज्जत, जिन्दगी से बड़ी है।
इंसान के सिर पर व्यसन, की धूल चड़ी है।।

यह अपूर्व अवसर है, आपके जीवन का।
आज आपके जीवन में परीक्षा की घड़ी है।।

यदि इंसान नौकरी या व्यवसाय करता है तो भी मात्र खानापूर्ति केा लिए ही करता है। यद्यपि नौकरी का अर्थ सेवाभाव है। हम पूछना चाहते हैं बताइये कौन से कर्मचारी हैं जो सेवा भाव से नौकरी करते हैं? किसी विभाग में क्यों ना हो मात्र दृष्टि लोगों की बंजट पर रहती है और किसी भी कार्य को करते हैं तो अर्थ लाभ का पहले ध्यान दिया जाता है। आज कोई भी कार्य नहीं जहाँ रिश्वतखोरी न हो। क्या यह सेवाभाव है? कितने कर्मचारी हैं जो अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहते हैं। ईमानदारी से कार्य करते हैं? आपने देखा होगा कभी किसी मंत्री का आगमन हो तब देखो कैसी तैयारियाँ चलती हैं? लोग किस प्रकार से फाइलें तैयार करके रखते हैं? आज देखा जा रहा है कि प्रत्येक सरकारी कार्यों में मात्र कागज पर योजनाएँ तैयार हो जाती हैं। कागज पर ही तैयार होकर अधिकांश योजनाएँ अधूरी पड़ी रह जाती हैं। एक कर्मचारी या सरकार का तबादला होकर गया कि दूसरे कर्मचारी ने उसे रद्द कर दिया। नया कार्यक्रम चालू हो जाता है। व्यवसायी का लक्ष्य मात्र अधिक से अधिक लाभ कमाना है चाहे उसे कितनी भी झूठ बोलना पड़े अथवा कितनी भी मिलावट करना पड़े। आज तो देखा जा रहा है कि आदमी को मरने के लिए शुद्ध जहर भी प्राप्त नहीं हो रहा। उसमें भी मिलावट हो रही है और फिर आज के पैकिंग के जमाने में लेबल के अन्दर क्या है? कौन देखता है अथवा पिसी हुई वस्तु में क्या पड़ा है? किसे जानकारी है? लोग विज्ञापन के दीवाने हैं जो विज्ञापन में लोगों ने देखा वह उसी आधार पर अपनी प्रवृत्ति करना प्रारंभ कर देते हैं। आज लोगों को यह भी फिक्र नहीं रहती है कि हमारे भाई-बंधुओं का क्या होगा? जो जीवनदायिनी, औषधियाँ, दवाइयाँ हैं उनमें भी मिलावट करके अधिक से अधिक धन अर्जित करने के लिए व्यवसायी वर्ग आगे रहता है।

आज धरती से इंसानियत भी खोने लगी है।
आज इंसान की इंसानियत भी रोने लगी है।।
आज का इंसान अपनी हद से गिर चुका है।
आज जहर में भी मिलावट होने लगी है।।

आजकल राज और राजनीति की तो कथा ही अलग है। राजनीति तो मात्र वोट का खिलौना बनकर रह गई है। वोट के लिए लोग चाहे नोट से हो चाहे बन्दूक की नोंक पर हो, वोट लने के लिए जाकर हाथ जोड़ते हैं। वोट मिलना चाहिए और

नेता बनकर अपने अधिकारों का खुलकर हनन करते हैं और भोली-भाली जनता का जमकर दमन करते हैं क्योंकि आज सरकार भी बनती है तो खानपूर्ति के लिए बन रही है कोई भी नेता देश के प्रति अपने दायित्व के लिए नहीं बनते देखे जाते हैं बल्कि दर्प (घमण्ड) के लिए बनते हैं। आज नेता स्वयं और परिवार सेवा तक सीमित देखें जाते हैं, राष्ट्र सेवा तो मात्र खानापूर्ति है। इसके अलावा आज शादी विवाह भी मात्र खानापूर्ति बनकर रह गये है। एक समय था जब बारात जाती थी ७-७ दिन रुककर सभी रिश्तेदार आपस में मिलकर प्रेमभाव जागृत करते थे। एक पक्ष दूसरे पक्ष के लिये सुख-शांति के सूत्र बताया करते थे। सेवा-भाव करके मन को मोहते थे किन्तु आज लोग काम धन्धे में भी नहीं लगते और विवाह हो जाता है। एक बात और है पहले लड़के की बारात जाती थी किन्तु आज लड़की की बारात जाने लगी है। लड़के वाले बारातियों की सेवा करते है शायद इसलिये घर में पहले लड़के की चलती थी आज बारात लड़कियों की जाती है तो लड़कियों की चलती है। उनका शासन चलता है और दाम्पत्य जीवन भी खानापूर्ति बनकर रह गया है। शादी के कुछ दिनों के बाद देखा जाता है कि पति-पत्नी की कमियाँ बताता है। पत्नी पति की कमियाँ खोजती, सास-ससुर को तो पूछता कौन है और सारा जीवन खींचातानी में व्यतीत होता है। कई परिवारों में तो देखा जाता है एक घर में रहकर भी साथ नहीं रह पाते हैं या तलाक हो जाता है।

किसी प्रकार की सामाजिक मर्यादाओं का कहीं भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है। सामाजिक मर्यादाएँ डूबती जा रही है। लोग स्वच्छन्दी जीवन जी रहे हैं। अत: वह जीना भी मात्र खानापूर्ति के लिये रह गया है। इंसान जिंदगी से इतना तंग आ चुका कि वह जीना भी नहीं चाहता है किन्तु आयु कर्म के उदय से जीना पड़था उसके अंदर मरने की भी क्षमता नहीं है इसलिये जिंदगी के दिन गुजारना पड़ रहे है जो वास्तविक जिंदगी सुख-शांति और चैन की होती है वह नहीं रह गई। हम तो यहाँ तक कहें कि मरना भी खानापूर्ति का रह गया। लोग मरना भी नहीं जानते हैं। मरते हैं तो वह भी खानापूर्ति के लिये मरते हैं। जैन सिद्धान्त में मृत्यु को महोत्सव कहा गया है। महोत्सव और जानवर की तरह तड़प-तड़पकर मरण हो वह मृत्यु महोत्सव हो सकता क्या? कभी नहीं हो सकता। लोग मृत्यु महोत्सव की तैयारियाँ जिंदगी की आधी उम्र प्राप्त होने पर ही प्रारंभ करते थे तब कहीं अन्त समय तक मृत्यु महोत्सव को प्राप्त हो पाते थे यानि की इंसान कि जिंदगी की चार अवस्थाएँ महोत्सव को प्राप्त हो पाते थे यानि की इंसान कि जिंदगी की चार अवस्थाएँ कही

गई है।

१. ब्रह्मचर्याश्रम २. गृहस्थाश्रम ३. वानप्रस्थाश्रम ४. संन्यासाश्रम

पहले लोग अपने गृहस्थी के दायित्व को संतान के हाथों में सौंपकर साधना तप धारण करते थे। समाधि की साधना के लिए कषायों को उपशम करते थे और परिग्रह मोह छोड़कर जंगल अथवा आश्रम में रहकर नश्वर काया का विसर्जन करने के लिये काम से विरक्त रहते थे। इन्द्रियजयी बनने के लिये नीरस आहार करते हुए काया को कृश करते थे और जीवन के अन्त में सल्लेखना धारण करते हुए समाधि को प्राप्त करते थे, यही है मृत्यु महोत्सव यही समाधिमरण है।

जीवन चमन बनाने के लिए ज्ञान की किरण चाहिए।
परम शान्ति के लिए परमात्मा की शरण चाहिए।।
आत्मा की शुद्धि संयम से होती है प्यारे भाई।
चेतना की शुद्धि के लिए समाधि मरण चाहिए।।

किन्तु आज लोग राग और मोह से ग्रसित होकर परिवार के दल-दल में फँसे रहकर खाने के भी मोहताज हैं फिर भी तृष्णा बढ़ाते हुए इन्द्रिय लालसा में पड़े रहते हैं। कहा भी है–

''काया बूढ़ी हो चली, तृष्णा हुई जवान।
ऐसे में कैसे करें, निज आतम कल्याण।।

यानि जीवन तो खाना पूर्ति रहा परन्तु मरण भी खानापूर्ति बना है किन्तु अब इस लोक और परलोक की सफलता के लिए, मृत्यु महोत्सव पाने के लिये कदम बढ़ाना है यही हमारी प्रकृति है।

नारी का गौरव

नारी देश और समाज की नाड़ी कही गई है।
धर्म कार्यों को संचालन की गाड़ी कही गई है।।
इंसान का जीवन चमन नारी से ही होता है।
चिराग उत्पन्न करने के लिए काड़ी कही गई है।।

सर्वविदित है–प्रत्येक युग में सीता होती रही है–चीर हरण कराने वाली द्रोपदी होती है, राजपाट तज कर दर-दर भटकने वाली अंजना होती रही है, सब कुछ चुपचाप सहने वाली चंदना होती रही है, स्वाभिमानी शिक्षिता पिता का सिर ऊँचा रखने वाली ब्राह्मी होती रही है, तिरस्कार को प्यार मानने वाली राजुल होती

रही है, हजारों नारियों का दर्द अपने भीतर समेटने वाली कुष्ठ रोगी का वरण करने वाली मैना होती रही है। ये ऐसे चरित्र हैं जो सदैव समय से आगे ही चलते रहे हैं और चलते रहते हुए भी कभी अपनी मधुरता नहीं खो सकते। जब-जब समय का चक्र किसी को निराश, एकाकी, आहत करेगा तब-तब इन सन्नारियों की तपस्या हमें राह दिखायेगी। क्योंकि इन्होंने जीवन के लक्ष्य को भली-भांति समझ कर अपना पथ प्रशस्त किया था।

कितनी सदियाँ बीत जाएँ लेकिन ये सतियाँ विस्मृत नहीं होंगी, इसलिए कि ये जीवन की जीवन्त प्रतिमूर्ति हैं। उनका कुछ सैद्धान्तिक लक्ष्य रहा। उनके जीवन के परिप्रेक्ष्य में उन्हें पढ़ना पतझड़ में टूटते पत्तों के नीरव संगीत के बीच बसन्त का नृत्य देखना है। उनकी तपस्या में, त्याग में, बलिदान में, अभिव्यक्ति है, पतझड़ के सौरभ की।

उनका महाप्रयाण भी संजीवनी है। वे भले ही नि:शेष रह गई मगर उनके व्यक्तित्व की सशक्तता आज भी जीवन की विराट धरती को धारित किए हुए है। इन सभी सन्नारियों ने नारी-अन्विति को प्रभावकारी, संकेतात्मक आवेष्टन प्रदान कर, जीवन, सृष्टि और देश की विभिन्न समस्याओं को आन्दोलित करने का सुप्रयास किया है। इनमें व्यक्ति-बोधात्मक ही नहीं समष्टिजन्य सापेक्षवाद का उज्ज्वल सौंदर्य है। नारी अन्तश्चेतना की यथार्थता से अनुप्राणित इनके जीवन से जीवन संगति का ग्रहण किया जा सकता। अनेक टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर इन्होंने बड़ी निकटता और मार्मिकता से पथ प्रशस्त किया है। इनके उत्सर्ग का आराधना-रूप उन्नति का उन्नति का उन्नयन करता हुआ साक्षात् प्रतीत होता है।

नारी के सम्पूर्णत्व से भाग्य के विरुद्ध इनका सार्थक संघर्ष प्रेरक है। जैन नारी की उत्कृष्टता इसमें ही रही कि उसने सभी युगों में सहिष्णुता, संयम और साधना के निर्माण के मध्य अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखा। जैन नारी ने अन्धविश्वासों और रूढ़ियों को स्वप्न में भी स्वीकार नहीं किया। उसकी आस्तिकता और भक्ति पद्धति अनूठी है। जैन नारी कभी हाशिये पर नहीं रही। भाव सत्य और जीवन सत्य से अनुप्राणित होकर उसका सच्चा मानवी रूप मुखरित हुआ। जैन धर्म में अतीत से लेकर वर्तमान तक नारी (श्राविका) की और विशेषत: साध्वियों की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। जहाँ एक ओर जैन नारी ने अपने शील को संरक्षित किया वहीं आध्यात्मिक विकास का भी मार्ग प्रशस्त किया। जैसा कि भक्तामर स्तोत में कहा है–

सौ-सौ नारी सौ सौ सुत को जनती रहती सौ सौ ठौर।
तुम से सुत को जनने वाली महती होती क्या है और।।

साधना में उनका अटूट विश्वास रहा और उसकों ही अपने जीवन का ध्येय समझा। उत्तरोत्तर उत्थान में ही उसका विश्वास विश्वास है। राजकुल एवं उच्च वर्ग में जन्म लेकर सामंती संस्कृति में पालित-पोषित होने पर भी उन्होंने अपने व्यक्तित्व का रूप अपने चिंतन, मनन और सोच–समझ से निखारा। प्रतिष्ठित मानवी बनकर उन्होंने पूरा युग संवारा। साहित्यिक गरिमा, आयातित अभिजात्य और सामाजिक दायित्व के साथ-साथ स्व समीक्षण और निरीक्षण द्वारा व्यक्तित्व की स्थापना की।

इन्होंने असंभव को संभव कर पलायनवाद अथवा यथास्थितिवाद की सम्पूर्णता को जीवन प्रगति और सामंजस्य के साथ स्वीकार कर भाग्य के समक्ष घुटने नहीं टिकाए हैं और न ही जीवन को दुर्बल बनाया है। सबलता का संबल लेकर निजत्व का आलोक प्रकाशित कर आस्था और विश्वास उत्पन्न करने वाली इन वीरांगनाओं ने सम्पूर्ण नारी जाति को पूज्या एवं आराध्या बनाकर नारी के गौरव की रक्षा की है।

हम विश्वासपूर्वक कहते हैं कि जिस पल भी जीवन निरर्थक लगे, समस्याओं का जाल जकड़ने लगे अथवा जीवन में कोई राह दृष्टिगत न हो तो आप सत्यनिष्ठा व एकाग्रता से इन सात्विक सन्नारियों को स्मरण कर लेना तो अगले ही पल आप अप्रत्याशित रूप से ऊर्जस्वित हो उठेंगे। आज की प्रत्येक नारी के अन्दर भी इन साहसशीलता नारियों का निवास है। इनको विकसित करने की आज सम्यक् एवं सर्वप्रथम आवश्यकता है।

युगीन नारी हृदय संघर्ष से जुड़कर यदि इन पौराणिक किन्तु सदाकाल नवीन साहसी नारियों के माध्यम से किन्हीं मूल्यों की स्थापना कर सकी तो इसे आप मौलिकता कह सकते हैं। समस्त नारी जाति की मानसिकता और उसकी पृष्ठभूमि से जुड़ी प्रथम चुनौती के रूप में परिपाटियों, रूढ़ियों और कुरीतियों से जूझती हुई इन महिलाओं के जीवन चारित्र में हमें आज भी नारी से जुड़े समस्त प्रश्नों के उत्तर और सामाजिक विसंगतियों का सर्वसम्मत प्रतिकार दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने सामर्थ्यभर सर्जनात्मक जीवन निर्वाह करने का प्रयास ही नहीं किया अपितु जीवन को नए वैचारिक बोध से सम्पन्न कर समाधान दिए।

सुमन शूलों से लड़ते हैं, तभी पाते बहारों को।
किश्ती तूफां से टकराती, तभी पाती किनारों को।।

तुम्हारे हौंसलों को कौन है जो रोक सकता है।
चुनौती तुमने दी है जब, आसमां के चाँद तारों को।।

जैन नारी की महत्ता का प्रतीक इसके नारीत्व में अन्तर्निहित गुणों का अतुल वैभव है जिनमें अपने पूर्व विकास की अंगड़ाई है और अपनी अर्जित महत्ता की चिरस्पन्दित धड़कन सिहरन एवं मुस्कान, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक चेतना को अक्षुण्णता प्रदान करने में इनकी निर्मल गुण-पयस्विनी ने जो तरंगमय सक्रिय अवदान दिया है, उसकी अपनी ही महत्ता है।

जैन नारी अपनी गौरव विकास परम्परा का विकास सूत्र प्राचीनतम आदि युग के स्वर्णिम अभ्युत्थान के समय से ही ग्रहण करती है। इसका इतिवृत्त भारतीय संस्कृति की अमरता व अखण्डता का द्योतक है। आज भी ये सन्नारियाँ संस्कृति की प्राणधारा बन वर्तमान भौतिकवादी युग में अपनी व्यापक प्रेरणा का स्रोत प्रवाहित कर रही हैं।

समस्या रूप बदलकर आ रही है और उस समस्या का समाधान जब आज कोई नारी पौराणिक वीरा से ऊर्जा और मार्गदर्शन लेकर करती है तो स्वयं वीरांगना बन जाती है। सभी युगीन समस्याओं का समाधान हमें इनके चरित्र में मिलता है। जीवन सृष्टि का रहस्य सूत्र, निर्मल और नैसर्गिक आलोक से प्रदीप्त इन दीपशिखाओं को सधन्यवाद।

इनके जीवन दर्शन से हम सबको हमारा इष्ट पथ प्राप्त हो। इसी मंगलभावना के साथ हम नारी उत्थान की भावना भाते हैं।

सत् नारी का भी जग में सम्मान होना चाहिए।
किए गये शुभ कार्य का गुणगान होना चाहिए।।
क्यों पीछे रहे नारी इस तरक्की के जमाने में।
सबके साथ में नारी का भी उत्थान होना चाहिए।।

सत्य, बपौती किसकी?

लोग कहते हैं सत्य कड़वा होता है और कड़वी चीज कोई ग्रहण नहीं करना चाहता है कि हमें सत्य को स्वीकार करने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिये। यह सच्चाई किसी की बपौती नहीं है। किसी संप्रदाय, किसी देश-विशेष, किसी जाति-विशेष की नहीं है। सत्य को कौन खरीद सकता है? प्रत्येक आत्मा में सत्य विद्यान है। इसे प्रकट करने की विधि हमारे ऋषि-मुनियों, तपस्वियों ने बतायी है। उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया है। हम सत्य की पूजा तो कर रहे हैं, परन्तु उसे अपने

जीवन में नहीं उतार रहे हैं। राम की पूजा हम क्यों करते हैं? वे सत्य की साक्षात् मूर्ति। महावीर की पूजा क्यों करते हैं? क्योंकि उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया था। सत्य के साक्षात्कार करने वालों की हम पूजा कर रहे हैं, परन्तु हम उस सत्य को आंशिक रूप में भी अपने जीवन में उतारने में असफल हो रहे है, इसलिए धर्म बदनाम है। उनकी पूजा से नहीं, उन्होंने सत्य का साक्षात्कार करने की जो विधि बतायी उसे अपने जीवन में उतार कर हम सत्य का साक्षात्कार करें, तभी हम उनके उपासक कहला सकते हैं।

यह सत्य किसी की देन नहीं है। सत्य प्रत्येक आत्मा में मौजूद है। इसीलिए अनेक लोगों ने कहा, सत्य ही भगवान है। इतना ही नहीं, उसके लिए परिभाषाएँ भी की गयी, जैसे–**'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्।'** आधुनिक भौतिकवादी **'सुन्दरम् सत्यम् शिवम्'** कहते हैं, परन्तु ऐसी सुन्दरता का कोई अन्त नहीं है। हमारे आचार्यों ने यही कहा जो सत्य है, वह सुन्दर है, जिसमें सत्यता नहीं है, वह सुन्दर नहीं है। और वह सत्य कहाँ है? वह सत् और सत्य आत्मा में है। उससे सुन्दर कोई चीज तीन लोक में नहीं है। सुन्दर कौन है? आत्मा; क्योंकि अनन्त और समग्र सौन्दर्य को जानने की शक्ति आत्मा में है, फिर वह स्वयं कितना सुन्दर होगा। उस सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए सत्य की जरूरत है और यह सत्य एक अकिंचन के पास भी हो सकता है। यह सत्य किसी झोपड़ी में रहने वाले को भी प्राप्त हो सकता है, क्योंकि सत्य प्रत्येक आत्मा में मौजूद है, उसे प्रकट करना चाहिये। सत्य-अहिंसा इसी के पर्यायवाची शब्द हैं। ऐसा कोई आत्मा नहीं है, जिनके पास यह सत्य-अहिंसा न हो। हाँ, यह बात अलग है, किसी के पास आंशिक है और किसी ने उसे विकसित कर पूर्णता को प्राप्त कर लिया है।

धर्म आत्मा में है। धर्म बाहर नहीं है। धर्म किताब में भी नहीं है। किताब धर्म का मार्ग बता सकती है कि धर्म तुझमें है, किन्तु आपका धर्म आप में है।

आत्मा शाश्वत है, अशाश्वत है। शाश्वत और अशाश्वत भी है? एक में दो बातें कैसे? समुद्र में तरंगें उठती हैं, वे नष्ट भी होती हैं, परन्तु जल नष्ट नहीं होता, वैसे ही विचार आते हैं, विचार जाते हैं, नष्ट होते हैं, लेकिन विचार करने वाला आत्मा नष्ट नहीं होता। पर्यायें नष्ट होती है, द्रव्य नष्ट नहीं होता। पर्यायें बदलती रहती है, द्रव्य शाश्वत है, अजर-अमर है। इसी तरह हमारी आत्मा है। यह चैतन्य आत्मा कभी नष्ट नहीं होता। यह तो अजर-अमर और शाश्वत है। हम पर्याय को पकड़कर बैठते हैं और उसी को शाश्वत सत्य समझने की भूल करते हैं। हम

परिवर्तन को देखना नहीं चाहते जबकि जीव एक समय में एक पर्याय बदलता है, एक जीवन में कई अवस्थाएँ बदलता है।

सामाजिक आचार-विचार हमेशा से परिवर्तनशील हैं परन्तु जो धर्म है वह अजर-अमर है। अग्नि का धर्म जलाना है। जलाने का धर्म उसने कभी नहीं छोड़ा इसीलिए ब्रह्मा और अग्नि को पवित्र माना गया है। जैनाचार्यों ने कहा कि ध्यानाग्नि समस्त कर्मों को नष्ट कर देती है। और यह ध्यानरूपी अग्नि हमारी आत्मा में मौजूद है।

हमें अपनी आत्मा में लगे कर्मों को भगाना है।
अपनी विशद आत्मा का ध्यान लगाना है।।
आत्मा का धर्म आत्मा में समाहित है बन्धु।
हमें अपनी आत्मा में धर्म को जगाना है।।

कर्त्तव्य भी इन्सान का धर्म है :

हम संयोग को शाश्वत समझ बैठते हैं। अगली पीढ़ी तक जोड़ते हैं, पिछली पीढ़ी तक जोड़ते हैं। यह सबसे बड़ा मिथ्यात्व है। आँख मूँदने के बाद यह शरीर ही आपका अपना नहीं है, तो फिर अन्य पदार्थ कैसे हो सकते हैं? कर्त्तव्य निभाना आपका धर्म जरूर है, लेकिन उससे अधिक जो है, वह धर्म नहीं है। देश के प्रति कर्तव्य, समाज के प्रति कर्त्तव्य, अपनी आत्मा के प्रति कर्त्तव्य निभाना भी एक धर्म है; लेकिन याद रखिये जो व्यक्ति कर्त्तव्य से आगे नहीं जाएगा वह डूब जाएगा, खत्म हो जाएगा, उनका नाम कलंकित हो जाएगा। इस संसार में जो लिप्त हो जाता है, वह खत्म हो जाता है।

तन के प्रति क्यों मरते भाई! यह तो चर्म है
कर्तव्य का पालन करना इन्सान का कर्म है
जो पाया है उसे एक न एक दिन छोड़ना होगा
जोड़ना नहीं छोड़ना इन्सान का धर्म है।

अरे! हम भगवान महावीर और राम की पूजा इसलिए करते हैं कि वे छोड़ते हैं। वे छोड़ते गये, आप लोग जोड़ते चले जा रहे हैं। जो जोड़ता जा रहा है, वह डूबता जा रहा है, जो छोड़ता जा रहा है वह तिरता जा रहा है। आत्मा निर्दोष है। जब वह पर्याय में फँस जाता है, तो दिन-रात के फेर में आ जाता है। जब उसके लिए दिन-रात समान रूप में हो जाते हैं, तब उसी में भेद-विज्ञान प्रकट होता है और चेतन-अचेतन का भेद प्राप्त कर लेता है।

महत्ता, स्याद्वाद एवं अनेकान्त की :

हम नकली संसार को असली समझकर उसमें मोहवश डूबे जा रहे हैं और रात-दिन आत्मा को भूलकर सांसारिक वैभव के पीछे लगे हुए हैं। जब हमें असली आत्मा का धर्म और तत्त्वज्ञान समझ में आयेगा, तो हम नकली और असली आत्मा को समझ सकते हैं और संसार के दु:खों से मुक्त हो सकते हैं। इसीलिए हमारे आचार्यों के द्वारा समझाया। इसके अभाव में आप तत्त्वज्ञान को समझ नहीं सकते। एक वस्तु में दो परस्पर विरोधी धर्म कैसे संभव है? यह स्याद्वाद के माध्यम से ही समझा जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ में अनन्त गुणात्मक धर्म भरे हुए हैं। प्रत्येक जीव में भी अनन्त धर्म भरे हुए हैं। नहीं पाते। हम प्रकट को ही सत्य समझ बैठते हैं। जैसे व्यवहार में रौम दशरथ के पुत्र, जनक के दामाद, लक्ष्मण के भाई, सीता के पति भी थे और सबके राम भी थे। राम को अनेक दृष्टियों से देखने में यह स्पष्ट होता है। एक पदार्थ में अनेक गुणधर्म मौजूद है। पर्यायों का परिणमन हो रहा है। मनुष्य ने भी चौरासी लाख योनियों में पर्यायों का परिणमन करते हुए भी मिथ्या आदत नहीं छोड़ी। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मिथ्या आदत को छोड़े बिना कैसे हो सकती है? स्याद्वाद के साथ अनेकान्त को भी समझना बहुत उपयोगी है।

भारत एक विशाल देश है। यहाँ नाना धर्म-संप्रदाय है। जैसे माली बाग में जाता है, गुलदस्ता बनाता है। उस गुलदस्ते में सफेद, लाल, गुलाबी, नीले-पीले सब रंग के फूल सजाता है और अपे स्नेहीजनों को भेंट करता है, उसी प्रकार सारे सम्प्रदाय, नयों का समन्वय कर समस्त विचारधाराओं को अनेकान्त से एकता के सूत्र में बाँधकर एक गुलदस्ता बनायें। ऐसे गुलदस्ते को बनाने की कला सीखें, माली बनें। एकान्त को लेकर न चलें। जैसे माली गुलदस्ते के लिए सब पेड़ों से साथ लेता है, उसी प्रकार हम भी सब सम्प्रदाय से लाभ लें। भारत एक बगीचा है, हम सब उसके माली है। माली का कर्त्तव्य है कि वह सुन्दर गुलदस्ते बनाये, जिसे पानेवाला खुश हो जाये। अत: हम अनेकान्त को धारण करें।

भारतवासी बुद्धिमान बनें। उदार विचारवाले बनें। हमें केवल स्वयं को ही नहीं जीना है अपितु विशाल विश्व के, मानव-मात्र के कल्याण के लिए कार्य करना है। इस लक्ष्य के साथ कार्य करेंगे तभी भारत अपने पुराने आदर्शों को पुन: स्थापित कर सकेगा।

हम कौन हैं कहाँ से आए हमें इसका ज्ञान करना है
हम इन्सान हैं तो इन्सानियत का भान करना है

वसुधैव कुटुम्बकम् की नीति सिखाई हमारे पूर्वजों ने
अत: हमें जग के सब प्राणियों का कल्याण करना है।

स्वयं की शान्ति के साथ ही देश की शान्ति जुड़ी है

सामाजिक संगठन और सम्यग्दर्शन के लिए वात्सल्य अंग और धर्म-प्रभावना अंग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज हम वात्सल्य अंग भूल गये हैं। एक निगोदिया जीव भी मोक्ष का अधिकारी है। केवल जैन कुलोत्पन्न ही इसके अधिकारी नहीं हैं। हरिजन और गिरिजन सभी पवित्रता से मोक्ष जा सकते हैं। जाति का दुरभिमान मत कीजिये। एक-दूसरे के अच्छे विचार सुनिये, बुराई न कीजिये। सब में बुराई है, तो अच्छा भी है। कोई अयोग्य मनुष्य है ही नहीं, सबमें कोई-न-कोई अच्छाई, गुण अवश्य है, उसे ही देखिये, ग्रहण कीजिए। देखिये, आप अच्छाई के भण्डार बन जायेंगे। बुराई मत देखिये, बुराई देखेंगे, बुराई करेंगे तो आपके हाथ क्या लगेगा? बुराई करेंगे तो स्वयं बुरे बनेंगे। कहा भी है–

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोय।
जो दिल खोजा आपनो, मुझसे बुरा न कोय।।

कोयले की दुकान में घुसने पर काला अवश्य लगेगा। आप सदैव देश, मानव-मात्र, समस्त पशु-पक्षी के प्रति सुख प्राप्ति के विचार रखें। विचार श्रेष्ठ होने चाहिये। एक-एक शब्द में कलह-निर्माण की, अशान्ति-निर्माण की शक्ति है। साथ में प्रेमभाव उत्पन्न करने की शक्ति भी है। अत: प्रेमभाव वाले शब्द का ही प्रयोग कीजिये।

अत्याचार और लूट-खसोट से समृद्ध होने पर शान्ति नहीं है। हमें विश्व के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करना चाहिये। महावीर के सिद्धान्तों का, वात्सल्य का, प्रेम का जब आप पहले स्वयं पालन करेंगे, तभी अन्य भी पालन करेंगे। उपदेश से कोई नहीं अनायेगा। कहा भी है–

जरा अपने अन्दर प्रेम की गंगा बहाकर तो देखो।
अपूर्व आनन्द मिलेगा उसमें आप नहाकर तो देखो
वात्सल्य वह अमृत है जो सबको आह्लादित करता है
अपने अन्दर एक बार वात्सल्य जगाकर तो देखो

आपसे जैसे भी एक बार वात्सल्य सेवा कीजिये। मनुष्य का स्वयं के जीवन के साथ-साथ प्रकृति के साथ, पशु-पक्षियों के साथ भी संबंध है। उनके प्रति दयाभाव रखना चाहिये। मनुष्य में से दया-करुणा निकाल दें, तो मनुष्य मनुष्य नहीं

रहेगा पशुता की ओर लौट जाएगा।

जीवन मानवीयता के साथ व्यतीत कीजिये। आज पढ़ाई जा रही है, पर प्रेम, वात्सल्य घटता जा रहा है। प्रेम और वात्सल्य न होगा तो राष्ट्र में शान्ति नहीं होगी। व्यक्तिगत शान्ति के साथ ही देश की शान्ति जुड़ी हुई है। आज लोग विश्व शांति के नारे लगाते हैं किन्तु स्वयं में अशांत हैं जब तक स्वयं में शांति नहीं होगी तब तक कहीं शान्ति होने वाली नहीं है।

धर्म, समताभाव में :

जन्म-मरण के बीच मानव-जीवन कितना सुन्दर और असुन्दर है, यह कहना तो मुश्किल नहीं है; परन्तु हमें ऐसा प्रयास करना चाहिये, जिससे हम अपने जीवन को सुन्दर, आकर्षक और आदर्श बना सकें।

हर युग में महापुरुष आते हैं, वे अपने रास्ते पर चलते हैं, अन्वेषण करते हैं, आत्मचिन्तन, अनुभव और आदर्श छोड़ जाते हैं। उनके आदर्श की एक बूँद से भी हमारा काम चल सकता है। जिस प्रकार एक बूँद चखने से उसकी वास्तविकता का पता चल जाता है, उसी प्रकार धर्म की, सच्चाई की एक बूँद भी चखने से आत्मशान्ति-संतोष का अनुभव होता है।

हमारा भारत धर्म-प्रधान देश रहा है। भगवान महावीर एवं राम बहिरंग वैभवों से नहीं अपने धर्ममय, स्तयनिष्ठ और सत्य का साक्षात्कार करने से मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान कहलाये।

ग्रन्थ पढ़ने, स्वाध्याय करने से क्या लाभ है? क्या इसके भी फल लगते हैं? आत्महित में प्रट होना ही ज्ञान और बुद्धि का फल है। वीतरागता की प्राप्ति होना बुद्धि का फल है। इस वीतरागता की प्राप्ति के लिए मनुष्य को मोह-जाल, माया-प्रपंच की जो झंझटें हैं, जिनमें मन फँसता चला जाता है उनसे बचना बहुत जरूरी है। इसके लिए भेद-विज्ञान को समझना परमावश्यक है। समझने के बाद उसे मन-वचन-काय से मोह को यथासंभव यथाशक्ति जीतने का प्रयत्न करना चाहिये।

पं० दौलतरामजी 'छहढाला' में कहते हैं-**'मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।'** मनुष्य मोहरूपी शराब को पीकर अपने आत्मरूपी परमात्मा को भूलकर बैठा है और माया-जाल के पीछे लगा हुआ है।

लोग कहते हैं कि स्त्रियाँ मोक्ष नहीं जा सकती हैं अत: उनके द्वारा धर्म नहीं होता किन्तु सत्य यह है कि जिस प्रकार गृहस्थ जीवन में कर्तव्यों का पालन पुरषों

की जिम्मेदारी है, उसी प्रकार महिलाओं की भी है। **जिनसेनाचार्य ने महापुराण में कहा है** कि जो विदुषी हैं, कष्ट-सहिष्णुता आदि गुणों से सम्पन्न हैं, वह गुरुपद को पाती हैं। लोग कहते हैं कि नारी की निन्दा की गयी है। अरे भाई! निन्दा दोषों की की गयी, गुणों की किसी ने भी निन्दा नहीं की। सतियों को तो ऋषि-मुनियों ने ऊपर उठाया है, उनकी महिमा प्रकट की है। जिस तरह मल्लाह यात्रियों को नदी में आने वाले तूफानों से बचाता हुआ उस पार पहुँचाता है, वैसे ही अपने विवेक और समझदारी से गृहस्थ जीवन में आने वाले दु:खों और संकटों से बचाते हुए कर्तव्य परायण सत्नरी ससुराल से लेकर पीहर तक और पीहर से लेकर ससुराल तक दोनों किनारों तक पहुँचाने की जिम्मेदारी स्त्री की है और वह तभी पहुँचा सकती है, जब वह सीता के समान संपत्ति के समय पीछे रहे और विपत्ति के समय आगे रहे, क्योंकि संपत्ति के समय तो सब साथ देने वाले हैं परन्तु विपत्ति आने पर सब भाग खड़े होने वाले हैं। इसीलिए महासती सीता के चरण गंगाजल से अधिक पवित्र माने गये। जिससे सास के मन में बहू और बेटी के प्रति भेद नहींहो, समता हो, वही धर्मात्मा बन सकती है।

धर्म कोई मन्दिर में जाने पर ही नहीं होता है। धर्म तो समताभाव में है। समताभाव को प्राप्त करना धर्म है। सूत्र या श्लोक रटने से कुछ नहीं होता, उसे समझाकर उसके अनुसार आचरण करना आवश्यक है। हमारी संस्कृति ने भाव दिया है, वह समता और वीतरागता का है। समताभाव को छोड़कर दुनिया में धर्म और उसका सिद्धान्त सिद्ध नहीं हो सकता। हम समझ नहीं पा रहे हैं कि धर्म क्या चीज है? धर्म दुकान का, मकान, मन्दिर-मस्जिद-गिरजाघर का अलग-अलग नहीं है। धर्म सर्वत्र है, सदैव एक है। जब तक हम इस बात को नहीं समझेंगे, तब तक धर्म-लाभ नहीं ले सकेंगे, धर्णात्मा भी नहीं बन सकेंगे।

हमारे देश में जो सांस्कृतिक परम्पराएँ रही हैं, उनमें भगवान महावीर और राम जैसे महापुरुषों का योगदान है। हम उन परम्पराओं से दूर होते चले जा रहे हैं। हम अपने जीवन में रामराज्य का एक भी गुण नहीं अपनायेंगे, तो रामराज्य कैसे ला सकेंगे? भगवान महावीर ने अपने सिद्धान्त के साथ दो बातें दी–विचार और आचार। विचारपूर्वक आचार करो और आचारपूर्वक विचार करो। विचार इसलिए करना है ताकि उसे आचरण में उतारा जा सके। **विचार में स्याद्वाद और आचार में अहिंसा-यह भघवान महावीर की महान देन है।**

किसी जाति या धर्म के कारण कोई बड़ा नहीं हो सकता है। न हिन्दू न

मुसलमान न सिक्ख न पारसी अच्छा है। अच्छा वह है जिसकी नीयत अच्छी है। जब हम औरों को सताते हैं, तब कहाँ जाता है हमारा धर्म? कहाँ जाते हैं भगवान राम और महावीर? उनके सिद्धान्त कहाँ चले जाते हैं? हमने तो धर्म को ढकोसला बनाकर छोड़ दिया है। हमने उसे दो नम्बर का बना दिया है।

भगवान राम और महावीर के आदर्शों को अपनाइये। उम्र बढ़ती जा रही है यानी घटते जा रहे हैं। धन काम नहीं आयेगा, अगर कछ का आयेगा तो वह धर्म आयेगा। आपको दहेजादि जैसी कुप्रथा को समाप्त करना चाहिये। कठोरता से कदम उठाकर प्रयत्न करना चाहिये। समय रहते आदर्श उपस्थित करना चाहिये।

हमें महापुरुषों के आदर्शों पर चलने में मन लगाना है।
उस आदर्श मार्ग पर चलकर स्वयं आदर्शों को पाना है।।
हमें अपना कल्याण करने के लिए प्यारे भाई
अपने विशद जीवन को भी आदर्शमय बनाना है।।

महत्ता, संस्कारशील मन की

मन को पवित्र बनाना है, तो उसे संस्कारशील बनाना होगा। आप जानते हैं चीनी (शक्कर) बनाने के पीछे कितने संस्कार करने होते हैं, तो फिर आत्मा को पवित्र बनाने के लिए, आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए कितने संस्कार करने की आवश्यकता है।

संसार में मनुष्य ने अन्य पदार्थों पर पत्थर पर संस्कार कर उन्हें बेसकीमती बना दिया परन्तु स्वयं का संस्कार नहीं कर सका, कीमती नहीं बना सका। धर्म कहता है कि स्वयं का संस्कार करो, अपने आपको कीमती बनाओ।

इससे स्पष्ट होता है कि दुनिया में कोई मौलिक चीज है, तो वह हमारी आत्मा है। आत्मा में जो ज्ञान है, जिसके द्वारा हमें दुनिया की जानकारी होती है, लेकिन हमें अपनी जानकारी नहीं हो रही है।

जिनधर्म में आत्मशुद्धि साधन है। आत्मा को शुद्ध करने के जो साधन हैं वे शुद्ध होंगे, पवित्र होंगे तो आत्मशुद्धि होगी। जिस प्रकार साफ बर्तन में दूध रखेंगे तो वह शुद्ध रहेगा अन्यथा फट जाएगा। आत्मशुद्धि का साधन धर्म है। धर्म की पहली शर्त है कि पहले अपने मन को शुद्ध स्वच्छ, निर्मल और अप्रमत्त बनो, धर्म का उपदेश देने वाला जब स्वयं पवित्र और अप्रमत्त बनता है, तब दूसरों को भी वैसा बना सकता है। साधन और साध्य की पवित्रता की विशेषता यह है कि

संस्कार का सार निकल आता है। जब पदार्थों पर संस्कार करने से उनकी कीमत बढ़ती है, वे कीमती हो जाते हैं, तब हमारे आत्मा पर भी उत्तम संस्कार कर दें, तो वह कीमती हो जाता है। ऐसे तो वह कीमती है ही। उसे और अधिक से अधिक मूल्यवान बनाने की हमारी संस्कृति में जो विधि बतायी गयी है, वह संस्कार है। कहा भी है–

संस्कार हैवान को गुणवान बना देता है
संस्कार शैतान को इन्सान बना देता है
संस्कार एक शिल्पकार को प्यारे भाई
अनगढ़ पत्थर को भी भगवान बना देता है।।

लेकिन याद रखिये, पर पदार्थों को संस्कारित करने के लिए शोधें हो रही हैं, इस चमड़े की देह को संस्कारित करने के लिये तो बड़े-बड़े पार्लर आदि कई केन्द्र खोले जा रहे हैं, किताबें लिखी जा रही है, यह संस्कार कितने ही कीजिये, यह तो सब चमड़े के संस्कार है, इन्हें यही छोड़कर जाना होगा। इस चमड़े रूपी शरीर में जो चन्दनरूपी आत्मा पड़ा हुआ है। हमारा ध्यान चमड़े पर है, हम चर्मकार बन गये हैं। कुसंस्कार के कारण हम इस शरीर के पीछे पड़े हुए हैं। हम इस चमड़े को अपना समझ रहे हैं। इस चमड़े के शरीर में जो आत्मा बैठा हुआ है, उसे भूल रहे हैं। जब तक हम अन्दर झाँककर नहीं देखेंगे चमड़े की कीमत करने में लगे रहेंगे, तो मात्र चर्मकार बने रहेंगे। कहा भी है–

चन्दन पड़ा चमार घर निशदिन कूटे चाम।
तन तो चमड़ी से बना चंदन आतम राम।।

धर्म कहता है कि आप गुणवान हैं। जहाँ आपको गुण मिलता है, वहाँ से आप उसे लेते हैं। मनुष्य में गुण-ग्राहकता है, इसलिए आचार्यों ने **वन्दे तद् गुण लब्धये** कहा है। हे भगवन आपको हम प्रणाम कर रहे हैं, इसका मूल कारण यह है कि हम आपके गुणों को प्राप्त करना है। यदि हम केवल भघवान का गुणगान करते रहे तो गुणों की प्राप्ति कैसे होगी? उनके गुणों को जीवन में उतारने से ही गुणों की प्राप्ति हो सकती है।

इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि आप स्वयं संस्कारवान बनें, स्वार्थी बनें। इसका अथर मतलबी बनना नहीं है। स्वयं तैरना जानेंगे तभी तो आप दूसरे को डूबने से बचा सकेंगे। स्वयं तिरेंगे और दूसरों को तिरने में सहायक हो

सकेंगे।

भारतीय धर्म और संस्कृति का मूल उद्देश्य यह है कि स्वयं को स्वच्छ और पवित्र बनाओ। जो स्वच्छ और पवित्र बनता है, वही मार्गदर्शक बन सकता है, इसलिए तीर्थंकर महावीर और भगवान राम आदर्श बने तभी हम श्रद्धा से उनकी ओर देखते हैं उन्हें पूजते हैं।

मनुष्य का जीवन बड़ा कीमती है। उसमें विराजमान आत्मा का आपने आज तक कोई मूल्यांकन नहीं किया। अब आपको भोजन से पहले प्रसन्न भाव से परमात्मा का भजन करना चाहिये और उसके गुणों को जीवन में उतारने की कोशिस करनी चाहिये, तभी आपका भोजन और भजन कृतार्थ हो सकेगा। आप सब छोड़ सकते हैं, परन्तु धर्म को छोड़कर आप जीवन में कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते और वह धर्म हमारे आत्मा में है।

पानी पीना धर्म है, तो पिलाना भी धर्म है। इसलिए कहा गया **''परस्परोपग्रहो' जीवानाम्**। जीव परस्पर उपकार करके शान्ति से जी सकता है जो इसे छोड़ेगा वह धर्मच्युत हो जाएगा। इस धर्म को जीवन में उतारने से आत्मशुद्धि और शान्ति संभव है। हमें अपने स्वार्थों से ऊपर उठना है। सेवाभावी बनकर **'परस्परोपग्रहो' जीवानाम्** के सूत्र को जीवन में चरितार्थ करना है।

मनुष्य का असली जीवन वृक्षों पर निर्भर है। यद्यपि वनस्पति पर मनुष्य का ७०% जीवन निर्भर है फिर भी वह कहता है क्या रखा है शाकाहार में? लेकिन वह भूल जाता है कि उसका ७०% जीवन शाकाहार पर ही निर्भर है। वृक्षों का जीवन पशुओं पर है पशु प्रवृत्ति पर चलते हैं।

अहिंसा धर्म का यही कहना है कि यदि आपको जीने का अधिकार है तो दूसरों को भी है। अहिंसा केवल पूजने का धर्म नहीं है। यदि हम शान्ति से जीवना चाहते हैं तो दूसरे भी शान्ति से जियें, ऐसे उपाय हमें ढूँढ़ने होंगे। सामाजिक रूप से जीने वाला केवल व्यक्तिगत शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता।

हमारी संस्कृति में आत्मोन्नति और आत्म-कल्याण के लिए जो आदर्श हैं, उन्हें हमें दृढ़ता से अपनाना चाहिये और अहिंसादि व्रतों का पालन करना चाहिए।

अहिंसा चर्चा नहीं चर्या में पालन करने का नाम है
अहिंसा धर्म पालन करना प्रत्येक इन्सान का काम है
आज संत और भगवन्त जो सारे विश्व में पूज्य है
यह कोई और नहीं त्याग और अहिंसा का ही परिणाम है।

ज्ञान की बातें

जल से पतला कौन है?	–	ज्ञान
भूमि से भारी कौन है?	–	पाप
अग्नि से तेज कौन है?	–	क्रोध
काजल से काला कौन है?	–	कलंक
किसमें हृदय नहीं होता है?	–	पत्थर
सोते हुए भी पलकें बंद नहीं करती	–	मछली
वायु से भी तेज चलता है।	–	मन
विष से भी अधिक जहरीला है।	–	अपमान
पैसे से भी अधिकल मूल्यवान है।	–	इज्जत
मानव जीवन का शृंगार है।	–	दु:ख
दूध से भी उज्ज्वल है।	–	महिमा
दोस्ती का जहर है।	–	संदेह
सबसे बड़ा बल है।	–	आत्मबल
सबसे बड़ा वाद है।	–	अनेकान्तवाद
अरिहंत क्या नहीं करते?	–	आलस्य
रोगी का मित्र	–	चिकित्सक
विपत्ति का साथी	–	साहस
शांति का मार्ग	–	संतोष
आकर्षण का साधन	–	मुस्कन
मनुष्य का सहारा	–	आशा
सफलता की कुंजी	–	कड़ा परिश्रम
बिना माचिस के आग लगाने वाला	–	चुगलखोर
पकड़ तो नहीं सकते पर देख सकते हैं	–	परछाई
कम से कम दो व्यक्ति लड़ते	–	लड़ाई

✦✦